केरल ज्योति

फरवरी 2024

ISSN 2320-9976
UGC Care - List

केरल हिंदी प्रचार सभा

ISO 9001: 2015

विश्व हिन्दी दिवस का उद्घाटन भाषण श्री.के.मुरलीधरन एम.पी. कर रहे हैं

उद्घाटन समारोह में डॉ.मधुबाला जयचन्द्रन, डॉ.राखी बालगोपाल और प्रो.डी.तंकप्पन नायर भाषण कर रहे हैं।

श्री. मुरलीधरन एम.पी. विश्व हिन्दी दिवस का उद्घाटन करते हुए दीप प्रज्वलन कर रहे हैं।

पुष्प : 60 दल : 11 अंक: **फरवरी 2024**

अनुक्रमणिका

संपादकीय 5

नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना : मलयालम कविता में-**डॉ. जयकृष्णन. जे** 6

अमीर खुसरो के पुनर्पाठ का समसामयिक संदर्भ - **मधु वासुदेवन** 10

माखन लाल चतुर्वेदी की कहानियों का समीक्षात्मक अध्ययन-
डॉ.चंद्रकांत सिंह 14

स्त्री मुक्ति संघर्ष की दस्तावेजः 'शेष कादंबरी' उपन्यास - **मिनी.एन** 18

मोहन राकेश की नारी पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण - **शांती सी लोपस** 20

नयी कहानी आंदोलन की पृष्ठभूमि : एक अवलोकन - **डॉ. उपेन्द्र कुमार** 24

सांस्कृतिक विस्थापन की त्रासदी : पाकिस्तान मेल उपन्यास के संदर्भ में
लक्ष्मिप्रिया बालकृष्णन 29

मेरे पूजनीय गुरुवर श्री के.एस.राघवन पिल्लै (संस्मरण) -
के.राघवन नायर 34

समकालीन सांस्कृतिक परिदृश्य में इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानी
डॉ बिनु डी 35

शब्दों की अशुद्धि में... (कविता) - **आतिरा धनिष्ठा** 40

दलित आंदोलन और दलित साहित्य - **डॉ सिन्धु ए** 41

हिंदी कथा साहित्य में परिवारः परिभाषाएँ एवं भेद - **डॉ स्मिता चाक्को** 44

व्यवस्था के हथकंडे और व्यक्ति की नियति : जितेंद्र भाटिया की
कहानियों के संदर्भ में - **डॉ सौम्या. एस** 46

ममता कालिया की कहानियों में नारी विमर्श - **जीता जोस** 50

यमदीप और तीसरी ताली का तुलनात्मक अध्ययन - **जीत कौर** 54

प्यार खुद से करो (कविता) - **श्रीनिधी शिवदासन** 58

'पट्टिनत्तार' (काव्य)
मूल : पी.रविकुमार, अनुवाद : प्रो.डी. तंकप्पन नायर 59

देवयानम् (आत्मकथा)
मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा, अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना 62

मुखचित्र : श्रीमती अश्वती तिरुनाल गौरी लक्ष्मी बाई तंपुराट्टी (पद्मश्री से अलंकृत)

केरलज्योति

केरल हिंदी प्रचार सभा की मुख पत्रिका

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय की वित्तीय सहायता से प्रकाशित)

पूर्व समीक्षा समिति

प्रो (डॉ) एन रवींद्रनाथ
डॉ के एम मालती
प्रो(डॉ) आर जयचन्द्रन
प्रो (डॉ) जयश्री एस आर

परामर्श मंडल

डॉ तंकमणि अम्मा एस
डॉ लता पी
डॉ रामचन्द्रन नायर जे

प्रबन्ध संपादक

गोपकुमार एस (अध्यक्ष)

मुख्य संपादक

प्रो डी तंकप्पन नायर

संपादक

डॉ. रंजीत रविशैलम

संपादकीय मंडल

अधिवक्ता मधु बी (मंत्री)
सदानन्दन जी
मुरलीधरन पी पी
प्रो रमणी वी एन
चन्द्रिका कुमारी एस
एल्सी सामुवल
आनन्द कुमार आर एल
प्रभन जे एस
डॉ नेलसन डी

सूचना : लेखकों द्वारा प्रकट किये गये मत उनके अपने हैं। उनसे संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।

लेखकों से निवेदनः

• हिन्दी और इतर भारतीय भाषाएँ, साहित्य, संस्कृति आदि पर लिखी गयी उच्च स्तरीय मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ आमंत्रित हैं। • भाषा, साहित्य, संस्कृति आदि पर आयोजित समारोहों, चर्चाओं, संगोष्ठियों के समाचारों का भी स्वागत है। इन समाचारों को प्रस्तुत करनेवाले का नाम और पूरा पता भी लिख भेजें। • भारतीय भाषाओं से अनूदित कविता, कहानी भी भेजें। उनके साथ मूल लेखक से प्राप्त अधिकार पत्र भी प्रेषित करें। • प्राकाशनार्थ रचनाएँ साफ-साफ अक्षरों में लिखकर अथवा टंकित कर या **डी.टी.पी.** करके **सी.डी.** में भेजें। कृपया कार्बन प्रति न भेजें। • स्वीकृत रचनाएँ यथासमय पत्रिका में प्रकाशित की जाएँगी। • आप ई-मेल द्वारा भी अपनी रचनाएँ भेज सकते हैं। ई-मेल में Microsoft Word or Pagemaker फाइल में भेजिए। ई-मेल आईडी :khpsabha12@gmail.com • अपनी रचना के साथ पूरा पता (जिला, राज्य और पिनकोड सहित), लघु परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक, 'केरल ज्योति', केरल हिन्दी प्रचार सभा,
तिरुवनन्तपुरम-695 014

सभा का मुख्यालय और उसकी गतिविधियाँ

केरल की राजधानी तिरुवनंतपुरम के वषुतक्काड़ में सभा का मुख्यालय स्थित है। सभा के मुख्य परिसर में सभा के संस्थापक मंत्री की पावन स्मृति में श्री वासुदेवन पिल्लै स्मारक हिंदी ग्रंथालय, स्नातकोत्तर अध्ययन अनुसंधान केंद्र, साहित्याचार्य महाविद्यालय, केंद्रीय हिंदी महाविद्यालय, टंकण और आशुलिपि संस्थान, परीक्षा भवन, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, राष्ट्रज्योति पब्लिशेर्स के प्रकाशन अधिकारी का कार्यालय, हिंदी अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय (बी.एड़) और केरल विश्वविद्यालय की मान्यता प्राप्त शोध केंद्र हैं।

विज्ञापन दर (साधारण अंक)

	मासिक	वार्षिक
आवरण पृष्ठ 4 (रंगीन)	रु.2500.00	25,000.00
आवरण पृष्ठ 2 एवं 3 (रंगीन)	रु.2000.00	20,000.00
साधारण पृष्ठ पूरा	रु.1000.00	10,000.00
साधारण पृष्ठ 1/2	रु.600.00	6,000.00
साधारण पृष्ठ 1/4	रु.350.00	3,500.00

एक प्रति का मूल्य रु. 25/- आजीवन चंदा : रु. 2500/- वार्षिक चंदा : रु. 250/-

A /c No. 57022786007 IFS Code : SBIN0070033
State Bank of India, Vazhuthacaud Branch

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें : मंत्री, केरल हिन्दी प्रचार सभा, वषुतक्काडु, तिरुवनन्तपुरम-695 014.
दूरभाष:0471-2321378, 2329200, 2329459. फैक्स:0471-2329200 ई-मेल : khpsabha12@gmail.com

दूरभाष : 0471-2321378, 2329200, 2329459
फैक्स : 0471-2329459
मोबाईल : मुख्य संपादक : 9995680289 संपादक : 7898515222
E-mail : khpsabha12@gmail.com
Website : www.keralahindipracharsabha.com

केरलज्योति
सांस्कृतिक जागरण की मासिक पत्रिका
फरवरी 2024

संपादकीय

हिंदी भाषा की सार्वदेशिकता

कश्मीर से कन्याकुमारी तक एवं कच्छ से कामाख्या तक हिंदी ही एकमात्र ऐसी भाषा है जो भारत के हर कोने में बोली और समझी जाती है। सार्वदेशिकता का यह गुण देश की किसी अन्य भाषा में नहीं है। विश्व की सबसे अधिक बोली जानेवाली भाषाओं में हिंदी तीसरे स्थान पर है। स्वाधीनता आंदोलन के समय देश के प्रमुख नेताओं ने अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया हिंदी को ही। इसे राष्ट्रभाषा का दर्जा दिलानेवाले महान व्यक्तियों में गुजरात के महर्षि दयानंद और महात्मा गाँधी, बंगाल के रवींद्रनाथ ठाकुर और क्षितिमोहन सेन, महाराष्ट्र के गोपालकृष्ण गोखले और बालगंगाधर तिलक, पंजाब के लाला लजपत राय और दक्षिण भारत में मद्रास के चक्रवर्ती राजगोपालाचारी एवं मोतुरी सत्यनारायण आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

हिंदी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिए जाने से पूर्व ही 27 दिसंबर 1917 को महात्मागाँधीजी ने एक बार कहा था कि आज की पहली और सबसे बड़ी समाज सेवा यह है कि हम अपनी देशी भाषाओं की ओर मुडें और हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करें। हमें अपनी सभी प्रादेशिक कार्रवाइयाँ अपनी-अपनी भाषाओं में चलानी चाहिए और राष्ट्रीय कार्रवाई की भाषा हिंदी होनी चाहिए। 'राजभाषा' शब्द का प्रयोग सबसे पहले 15 अगस्त 1947 को किया गया और 1949 में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने भारतीय संविधान सभा में 'नाशनल लैंग्वेज' अर्थात 'राष्ट्रभाषा' और 'स्टेट लैंग्वेज' अर्थात 'राजभाषा' शब्द का प्रयोग किया। स्टेट लॉग्वेज के स्थान पर 'ऑफिशियल लैग्वेज' का उपयोग किया गया। 'ऑफिशियल लैंग्वेज' का अनुवाद राजभाषा माना गया। भारतीय संविधान के भाग-17, अनुच्छेद - 344 में संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी मानी गई।

आज प्रवासी भारतीयों में हिंदी के अध्ययन तथा अध्यापन की समृद्ध विधा विद्यमान है। इसका कारण यह है कि प्रवासी भारतीयों को हिंदी से भावनात्मक लगाव है और साथ ही वे अन्य भाषाओं की अपेक्षा हिंदी सीखना अपना कर्तव्य एवं अधिकार मानते हैं। विदेशों में हिंदी साहित्य में आज भी ग्रंथ लिखे जा रहे हैं। प्रवासी भारतीयों ने हिंदी की परंपरा को अपने योगदान से समृद्ध किया है। हिंदी के प्रसार की दिशा में यह श्लाघनीय प्रयास है। हिंदी का केंद्रीय महत्व उसके राष्ट्रभाषा, राजभाषा और संपर्क भाषा के रूप में सिद्ध हो चुका है।

प्रो.डी.तंकप्पन नायर
डॉ.रंजीत रविशैलम

नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना : मलयालम कविता में

डॉ. जयकृष्णन. जे

शोध सार: किसी भी प्रदेश के साहित्य की अपनी एक परंपरा होती है। उसी परंपरा से उर्जा लेकर साहित्य में नवीन प्रवृत्तियों का आविर्भाव होता है। मलयालम साहित्य में भी परंपरा और आधुनिकता के बीच इसी प्रकार की एक पारस्परिकता है। साहित्य समाज को उसकी समग्रता में अंतरंगता के साथ पकड़ लेता है और स्वयं प्रतिरोधी तेवर को अपनाता है। जातीय और धार्मिक भेदभावों, अन्धविश्वासों और अनीतियों का पर्दाफाश करके समाज को सुधार की ओर ले जाता है। ब्रिटिश शासन काल में लोगों के मन में देशभक्ति की भावना जगाने में और उनको स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने की प्रेरणा देने में मलयालम साहित्य ने खासकर मलयालम कविता ने अहम भूमिका निभाई है।

बीज शब्द : नवजागरण, राष्ट्रीय चेतना, मलयालम कविता।

केरल में स्वतंत्रता की लड़ाई उन्नीसवीं शताब्दी की शुरूआत में शुरू हुई है। सन् 1857 का विद्रोह भारत का पहला स्वतंत्रता संग्राम माना जाता है। लेकिन केरल में केरलवर्मा पष़्शिराजा की अंग्रेज़ों के विरुद्ध लड़ाई उससे भी पहले शुरू हुई थी। पष़्शि के वीरचरित सुनकर सभी केरलीय गौरव महसूस करते हैं। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में वे 'वीरकेरल सिंह' के नाम से जाने जाते हैं। वेलुतंपी दलवा की कुंडरा में हुई घोषणा (1809) उनकी देशभक्ति का परिचायक है और इसके द्वारा उन्होंने लोगों को अंग्रेज़ों के खिलाफ संघर्ष में शामिल होने का आह्वान दिया। वयनाड में आदिवासी समुदाय कुरिच्यर का विद्रोह 1812 में हुआ था।

उन्नीसवीं शताब्दी पूरे भारत के लिए एक सांस्कृतिक नवजागरण का समय था। खास राजनैतिक परिस्थिति ने भारतीयों के हृदय में उद्वेलित राष्ट्रीयता को नया रूप-रंग दे दिया। भारत के विभिन्न प्रदेशों में इसकी तरंगें भिन्न भिन्न तौर पर तरंगित हुई हैं। इसी दौरान केरल में भी कई परिवर्तन हुए हैं। शिक्षा, धर्म, समाज, राजनीति आदि सभी क्षेत्रों में नवजागरण के स्वर मुखरित हो उठे। नमक सत्याग्रह, असहयोग आन्दोलन जैसे आन्दोलन केरल में भी बहुत सक्रिय थे। लेकिन इनके साथ साथ छुआछूत का विरोध, मन्दिर प्रवेश, हरिजनों का उद्धार, पिछड़े हुए लोगों की उन्नति का प्रयास आदि भी स्वतंत्रता से संबन्धित हैं। सन् 1924 में वैकम सत्याग्रह शुरू हुआ। वैकम मन्दिर के पास की सड़क से निम्न जाति के लोगों को चलने के अधिकार के लिए यह सत्याग्रह चलाया गया। 1931 में गुरुवायूर मन्दिर के सामने के.केलप्पन के नेतृत्व में एक सत्याग्रह शुरू हुआ। उस समय निचली जाति के लोगों को मन्दिर में प्रवेश पर जो रोक लगाई गई थी, उसके विरोध में यह आन्दोलन चलाया गया था। 1934 में ईसाई और मुसलमान धर्म के लोगों को तिरुवितांकूर की प्रजासभा में प्रतिनिधित्व मिलने के लिए एक आन्दोलन चलाया गया। इसप्रकार केरल में स्वतंत्रता संग्राम के सिलसिले में जातीय और धार्मिक भेदभाव, अस्पृश्यता और अन्य कुरीतियों के विरोध में कई आन्दोलन चलाए गए थे।

साहित्य मानव चेतना को जगाकर उसे कर्मोन्मुख बना देता है। स्वतंत्रता की लड़ाइयाँ केवल तलवार से ही नहीं, शब्दों से भी की जाती हैं। मलयालम साहित्य में नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना की स्पष्ट रूप से अभिव्यक्ति हुई है। 1923 में कोषि़क्कोड से स्वतंत्रता संग्राम की जिह्वा के रूप में मातृभूमि समाचार पत्र निकाला गया। के.पी. केशव मेनोन ने इसकी स्थापना की और मृत्युपर्यन्त वे 'मातृभूमि' के संपादक रहे हैं। स्वतंत्रता संग्राम और मलयालम साहित्य को एक

शब्द में समाहित करके बताना है, तो इसके लिए 'मातृभूमि' शब्द पर्याप्त है। केरल में स्वतंत्रता की लड़ाई में इस समाचार पत्र का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है।

सामाजिक परिवर्तन को लक्ष्य करके जो जो कार्य किए जाते थे, उनका प्रतिबिंब साहित्य पर पड़ना स्वाभाविक है। सवर्ण भी सामाजिक परिवर्तन की ओर उन्मुख हुए हैं। चन्दुमेनोन का 1889 में प्रकाशित उपन्यास 'इन्दुलेखा' इसकी सूचना देने वाला उपन्यास है। 1908 में योगक्षेमसभा की शुरूआत हुई। ब्राह्मणों के बीच में प्रचलित सामुदायिक दुराचारों को दूर करने में इस सभा ने महत्वपूर्ण कार्य किया। समाज सुधार और वैचारिक क्रान्ति का नेतृत्व लेकर कई चिंतक-मनीषी इस युग में सामने आये। श्रीनारायणगुरु उनमें अग्रणी थे। उन्होंने मानव जाति के लिए जीवन भर काम किया। उन्होंने कहा कि सारे धर्मों का उद्देश्य एक ही है। एक बार जब नदियाँ समुद्र में मिल जाती हैं, तो उनका अंतर समाप्त हो जाता है। उस महान क्रान्तिकारी सन्त का सन्देश था "धर्म जो भी हो, यही आवश्यक है कि मानव सद्गुण संपन्न हो। सहोदरन अय्यप्पन, अय्यनकाली, चट्टंपी स्वामी आदि ने भी समाज सुधार को लक्ष्य करके विशिष्ट भूमिका निभाई है।"

मलयालम साहित्य से जुड़कर जब हम भारत की स्वतंत्रता की बात करते हैं, तो हमारे सामने सबसे पहले आने वाला नाम वल्लत्तोल नारायण मेनोन का है। वल्लत्तोल ने अपनी रचनाओं के माध्यम से नवजारगण और राष्ट्रीय चेतना का खूब प्रचार-प्रसार किया। वल्लत्तोल राष्ट्रीय भावना के अग्रणी कवि थे। भारत के स्वाधीनता संग्राम से वल्लतोल जैसे महान कवि अछूते नहीं रह सकते थे। उन्होंने देशभक्तिपूर्ण कविताएँ लिखकर युवकों को स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने की प्रेरणा दी। उनकी कविताओं से केरल के युवकों में एक नई चेतना पैदा हुई। सभी जगह उनकी कविताओं की गूँज सुनाई देने लगी। परिष्काराभिवर्धिनी सभा का आरंभ सन् 1900 में हुआ जो वल्लत्तोल के नेतृत्व में बनाई गई गाँव के युवकों की एक सांस्कृतिक सभा थी। युवकों में मातृभाषा का प्रेम, समाज सुधार की भावना और प्रगतिशील विचार पैदा करना इसका उद्देश्य था। वल्लत्तोल राष्ट्रकवि के रूप में प्रतिष्ठित हो गए। 1928 में तृश्शूर में साहित्य परिषद का सम्मेलन हुआ। वल्लत्तोल उसमें भाग न लेकर कांग्रेस के सम्मेलन में भाग लेने के लिए कलकत्ता चले गए। साहित्य सम्मेलन से भी स्वतंत्रता से संबन्धित सम्मेलन उनके लिए प्रमुख था। गाँधीवादी चेतना को उन्होंने आत्मसात कर लिया था। जब गाँधीजी और वल्लत्तोल की भेंट हुई, तो गाँधीजी ने उनसे पूछा- क्या आप सूत कातते हैं । वल्लत्तोल ने कहा कि नहीं, मैं सूत नहीं कातता हूँ। गाँधीजी ने पूछा- टागोर ने भी यही उत्तर दिया। कवियों को सूत कातने का काम क्यों निषिद्ध है। इसके उत्तर में वल्लत्तोल ने बताया कि कवि भावुक होते हैं। वे स्वयं काम नहीं करते। दूसरों को कर्मोन्मुख बनाना ही उनका काम है। इसप्रकार वल्लत्तोल ने गाँधीजी के सम्मुख बिना किसी हिचक के ईमानदारी के साथ अपनी राय व्यक्त की।

वल्लत्तोल अंधविश्वासों और अनीतियों पर खुला आक्रमण करते थे। शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति उनके कृतित्व की खूबी है। वे अपने युग की हर समस्या की बारीक पहचान करते थे। अपनी कविताओं में देश की सामाजिक, राजनीतिक, और सांस्कृतिक दुरवस्था के कारणों को पहचानकर उनका विश्लेषण करते थे। उनका आह्वान था कि जब कभी हम भारत का नाम सुनते हैं, तो हमारा अंतरंग स्वाभिमान से ओतप्रोत होना चाहिए। केरल का नाम सुनने पर हमारी नसों में खून उबलना चाहिए।

वल्लत्तोल ने अपनी कविताओं में आज़ादी के महत्व का स्पष्ट रूप से चित्रण किया है। 'किलिकोंचल' (चिड़िया की तुतली बोली) कविता में पिंजरे में बंद एक पक्षी का आत्मकथन है। बंधन चाहे वह सोने के पिंजरे में भी हो, तो भी वह बंधन ही है। बाहरी सुख-सुविधाओं से कैद की तीव्रता कम नहीं होती है।

स्वतंत्रता संग्राम के नेता दादाभाई नौरोजी के निधन के अवसर पर लिखी कविता में आज़ादी के महत्व का वर्णन है। कवि ने बताया है कि देशप्रेमियों के लिए आज़ादी ही साक्षात् स्वर्ग है।

गाँधीजी से भेंट होने के पहले ही उनके बारे में वल्लत्तोल ने कविता लिखी। 'कालम मारी' (ज़माना बदल गया) कविता में गाँधीजी के आगमन से आये परिवर्तनों की ओर संकेत है।

अलस बन गया प्रबुद्ध, मलिन बन गया विशुद्ध/
कलुष बन गया प्रसन्न, बदल गया ज़माना उतना।

1921 में वेल्स राजकुमार द्वारा अपने आदर-सम्मान के प्रस्ताव को वल्लत्तोल ने ठुकरा दिया। अंग्रेज़ सरकार का सम्मान प्राप्त करने से उन्होंने अपनी असहमति प्रकट की। स्वतंत्रता संग्राम का युग वल्लत्तोल की काव्य-साधना का वैभव काल था। गाँधीजी के प्रभाव से भारतीय राजनीति का माहौल जोशीला बन गया था। वल्लत्तोल गांधीजी को अपना गुरु मानते थे। 1922 में उन्होंने मेरे 'गुरु नाथ' शीर्षक कविता रची। गाँधीजी पर लिखी उनकी यह कविता बहुत ही प्रसिद्ध हुई। भारतीय भाषाओं में गाँधीजी के विराट व्यक्तित्त्व पर लिखी कविताओं में इस कविता का विशेष स्थान है। अपने गुरुदेव के संबन्ध में कवि का कथन है - भगवान ईसा का त्याग, साक्षात् /श्रीकृष्ण का धर्म-रक्षा-उपाय/बुद्ध की अहिंसा, शंकराचार्य का मेधाबल/रन्तिदेव की करुणा, हरिश्चन्द्र का सत्य/मुहम्मद की स्थिरता सब एकसाथ/एक व्यक्ति में देखना चाहें तो/मेरे गुरु देव के पास आवें अथवा उनका चरित पढ़ें।

कविता की कुछ पंक्तियाँ यों हैं - यह लोक ही मेरा कुटुम्ब है / ये तृण-पल्लव कीट-पतंग ही मेरे परिजन हैं / त्याग ही संपत्ति है, विनय ही उन्नति है / ऐसा माननेवाले मेरे गुरु देव की जय हो। वे कहते हैं कि गांधीजी ने शस्त्र के बिना धर्मयुद्ध किया, पुस्तक के बिना पढ़ाया, औषधि के बिना चिकित्सा की, हिंसा के बिना यज्ञ किया। वल्लत्तोल की एक बहुत बड़ी खासियत यह है कि वे समय के साथ चलने वाले कवि थे। उनकी सहानुभूति अपने लोगों, अपने राज्य या देश तक सीमित नहीं थी, समस्त विश्व को वे अपना मानते थे। उन्होंने अपनी जन्मभूमि केरल और उसकी कला को लेकर लिखा, अपनी मातृभूमि भारत की महान परंपराओं के गुण गाए और विश्व में शांति और न्याय की स्थापना का आह्वान किया। सन् 1925 में वैकम सत्याग्रह के अवसर पर गाँधीजी केरल आए, तो वल्लत्तोल को उनसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। 'पापमोचन' इसी मिलन पर लिखी कविता है।

राष्ट्रीय आन्दोलन और सांस्कृतिक नवजागरण को लक्ष्य करके साहित्य साधना करनेवाले मलयालम साहित्यकारों में महाकवि वल्लत्तोल का नाम सर्वप्रथम आता है। लेकिन वल्लत्तोल से पहले ही भारत की आज़ादी को लेकर वी.सी. बालकृष्ण पणिक्कर ने कविता लिखी थी। अपनी एक कविता में उन्होंने गाँधीजी को नवतात कहकर संबोधित किया है। सुभाषचन्द्र बोस गाँधीजी को राष्ट्रपिता कहने के पहले वी.सी. बालकृष्ण पणिक्कर ने इसी अर्थ में नवतात शब्द का प्रयोग किया है। स्वतंत्रता संग्राम को विषय के रूप में स्वीकार करके मलयालम में पहली कविता वी.सी. बालकृष्ण पणिक्कर की है।

आधुनिक कविता में नई धारा के प्रवर्तक आशान, उल्लूर और वल्लत्तोल थे। ये राष्ट्रीयता और नवजागरण से प्रभावित कवि थे। कुमारनाशान मलयालम कविता के रोमांटिक वसंत की शुरूआत करने वाले कवि हैं। 'आशयगंभीरन'और 'स्नेहगायकन' उनके विशेषण हैं। श्रीनारायण गुरु के आत्मीय शिष्य कुमारनाशान ने जाति व्यवस्था के कारण दम घुटनेवाली मानवीयता का चित्रण किया। श्रीनारायण गुरु से मिलन आशान के जीवन का महत्वपूर्ण मोड था। एस.एन.डी.पी के सचिव के रूप में उन्होंने पिछड़े समुदायों की प्रगति के लिए कार्य किया है। मलयालम में सबको स्वतंत्रता की प्रेरणा देनेवाला और सबमें जोश पैदा करके देशप्रेम की भावना को जाग्रत करने

वाला स्वतंत्रता गीत कुमारनाशान का है।

स्वातंत्र्यम् तन्नेयमृतम् स्वातंत्र्यम् तन्ने जीवितम्/पारतंत्र्यम् मानिकलक्कु मृतियेक्काल भयानकम् (ओरु उद्बोधनम)

भारतीय संस्कृति के उदात्त पहलुओं को उजागर करने में उल्लूर. एस. परमेश्वरय्यर ने बड़ा उत्साह दिखाया। 1928 में तृश्शूर में केरल साहित्य परिषद के सम्मेलन में उल्लूर ने 'सुखम सुखम' शीर्षक कविता प्रस्तुत की। इसमें वे दलितों और नारियों के शोषण के खिलाफ अपनी वाणी मुखरित की। इस कविता में स्वतंत्रता की उत्कट वांछा है, साथ ही उनके क्रांतिकारी विचार भी द्रष्टव्य है। 1935 में मातृभूमि के विशेषांक में 'मातृभूमियुडे तृप्पादन्गलिल' शीर्षक लेख में महाकवि उल्लूर ने लिखा- अब मैं केवल एक ही मंत्र का उच्चारण करूँगा, वह है मातृभूमि का नाम। एक ही वृत्ति का पालन करूँगा, वह है मातृभूमि की सेवा।

बोधेश्वरन मलयालम की विख्यात कवयित्री सुगतकुमारी के पिता हैं। स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी और कवि के रूप में वे ख्यातिप्राप्त हैं। स्वतंत्रता संग्राम और अन्य सामाजिक कार्यों में वे सक्रिय रूप से भाग लेते थे। वैकम सत्याग्रह जैसे आन्दोलनों में उन्होंने भाग लिया। देश के गौरव का स्वर उनकी कविताओं में गूँज उठता है।

जय जय केरल कोमल धरणी/ जय जय मामक पूजित जननी

2014 में यह गीत केरल का सांस्कृतिक गीत घोषित किया गया।

अंशी नारायणपिल्लै कवि, पत्रकार और स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी के रूप में मशहूर हैं।

वरिका वरिका सहजरे सहना समरा समयमाय / करलुरच्चु कैकल कोरत्तु कालनडय्कु पोक नाम।

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान केरल की जनता बड़े जोश के साथ उनका यह गीत गाती थी। नमक सत्याग्रह के सिलसिले में वडकरा से पय्यन्नूर तक जो जुलूस निकाला गया था उसीमें गाने के लिए अंशी जी ने इस गीत की रचना की। तिरुवनन्तपुरम से उन्होंने 'महात्मा' शीर्षक पत्रिका निकाली। गाँधीजी के आदर्शों का प्रचार इस पत्रिका का लक्ष्य था। उनकी 'गाँधी रामायण' कविता पर सरकार ने प्रतिबंध लगाया था। इस कविता में कवि ने महात्मा गाँधी को श्रीराम के रूप में, भारत को सीता के रूप में और अंग्रेज़ों को रावण के रूप में चित्रित किया।

1934 में पूने में गाँधीजी बम आक्रमण के शिकार हुए। इसको लेकर पी.भास्करन ने 'मंगलपत्रम' शीर्षक कविता लिखकर इस घटना पर अपना आक्रोश प्रकट किया। जी.शंकरकुरुप्प, वेण्णिक्कुलम गोपालक्कुरुप्प, पी. कुंजिरामन नायर, चंगम्पुझा कृष्णपिल्लै, वैलोपिल्ली श्रीधरमेनोन आदि कवियों ने भी राष्ट्र की पुकार को रेखांकित किया था।

राष्ट्रीय आन्दोलन एक सांस्कृतिक जागरण का परिणाम है। देश की खोई हुई विरासत, परंपरा और अतीत से प्रेरणा पाकर भविष्य को उज्ज्वल बनाने का लक्ष्य उसमें प्रबल था। साम्राज्यवाद, सामंतवाद, पूँजीवाद और उपनिवेशवाद के दुष्परिणामों से छुटकारा पाने के लिए जनता एकसाथ खड़ी हो गई थी। उस अवसर पर केरल के कवि देश की स्वतंत्रता के लिए कटिबद्ध थे और वे अपनी रचनाओं के माध्यम से देश की जनता को इसकी प्रेरणा भी देते रहे।

संदर्भ सूची

1) प्रो. एम. अच्युतन, स्वातंत्र्य समरवुम मलयाला साहित्यवुम।

2) एम.आर. चन्द्रशेखरन, विलक्कुकल पुतियतुम पष़यतुम, नाषनल बुक स्टाल।

3) डॉ.ए.के.मित्तल, भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का इताहास, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।

4) आजकल पत्रिका, अगस्त 2017

प्रोफसर, हिंदी विभाग
सरकारी आर्टस कॉलेज
तिरुवनन्तपुरम।

अमीर खुसरो के पुनर्पाठ का समसामयिक संदर्भ

मधु वासुदेवन

अमीर खुसरो (1253-1325) आदिकाल के सबसे लोकप्रिय कवि थे। प्रतिभावान संगीतकार एवं मेधावी इतिहास लेखक के रूप में भी उनको काफी कीर्ति प्राप्त हुई थी। खुसरो का कर्म-क्षेत्र दिल्ली था। मनोरंजकता एवं सोद्देशपरकता उनकी रचनाओं की सबसे बडी खूबियत मानी जाती थी। रामकुमार वर्मा इनको अवधी के प्रथम कवि मानते थे। खुसरो का वास्तविक नाम अबुल हसन था। वे हज़रत निजामुद्दीन ओलिया के शिष्य थे। उनके पिता सैफुद्दीन तुर्क थे और माता दौलत नाज़ राजपूत थीं। खुसरो के दो विश्रुत उपनाम थे, तुर्क-ए-अल्लाह तथा तोता-ए-हिन्द जो उनकी साहित्येतर योगदान की प्रत्यक्ष सूचना देते थे। यद्यपि साहित्य की सभी विधाओं पर वे जबरदस्त पकड रखते थे, फिर भी इतिहास लेखन पर उनकी विशेष रुचि रही। वे दिल्ली के मशहूर शासक जलालुद्दीन खिलजी और अलाउद्दीन खिलजी के समकालीन थे। इसके अतिरिक्त खुसरो ने बलबन, मुहम्मद, कैकुबद, मुबारक शाह खिलजी एवं गयासुद्दीन तुगलक के शासनकाल व उत्थान-पतन को भी देखा था जिसके कारण उनका इतिहास लेखन वस्तुपरकता तथा प्रामाणिकता से अलंकृत हुआ था। "उन्होंने हिंदी भाषा संबंधी जैसी मर्मज्ञता, योग्यता और निपुणता दिखलाई वह उल्लेखनीय है। उनके पहले के कवियों की रचनाओं से उनकी रचनाओं में अधिकतर प्रांजलता है जो हिंदी के भाण्डार पर उनका प्रशंसनीय अधिकार प्रकट करती है।"[1] आमतौर पर उनका साहित्य मानव जाति की एकता का बड़ा प्रेरणास्रोत माना जाता है।

अमीर खुसरो भारत के सांस्कृतिक अंतःकरण का सार्थक हिस्सा था। वे भारतीय काव्य, दर्शन और शास्त्रीय संगीत से जुड़े हुए लोकतत्त्वों की गहरी पहचान रखते थे। खुसरो शास्त्रीय संगीत के प्रकांड पंडित एवं मधुर गायक थे। हिदुस्तानी संगीत के विकास में उन्होंने ऐतिहासिक भूमिका निभाई। खुसरो ने ही मृदंग को काटकर तबला बनाया, सितार का सुधार किया। उनके अनुसार संगीत का आस्वादन करना ईश्वर से इश्क करने के सामान है। वे मानते थे, संगीत और ईश्वर अखंड हैं जिनकी कोई सीमा नहीं है। खुसरो ने जाति, धर्म एवं स्थान के बीच की 'दूरी' को हटाकर संगीत के अंदर समावेशिकता को उत्पन्न करने का कठोर परिश्रम किया। कहा जा सकता है कि वे कट्टरवादियों से लड़ने के साधन के रूप में संगीत का उपयोग करते थे। "खुसरो अपने काल का अकेला कला-साधक था। इस मान्यता का परीक्षण दर्शन, साहित्य, संगीत और कला के संदर्भ में यहाँ किया जा रहा है।"[2] उन्होंने परंपरागत मुसलमान के दायरे से बाहर आकर परंपरा से संबद्ध धार्मिक व्यवस्था एवं रिवाजों को चुनौती दी। नए सांस्कृतिक विकल्प की अन्वेषण हेतु कला-साहित्य के असंख्य उदाहरण वे लगातार पेश करते थे। घृणा पर आधारित धर्मोन्माद पर अंकुश लगाने के लिए प्रतिबद्ध अमीर खुसरो, अंतर-सांस्कृतिक उत्कर्ष के लिए सदा कर्मरत थे।

अमीर खुसरो का व्यक्तित्त्व इतना लोभहीन था कि उनका हृदय सांस्कृतिक सद्भावना से भरा हुआ था। एक निरंतर यात्री के रूप में उनकी घुमक्कड़ जिज्ञासा काफी लोकप्रिय थी जिससे उनको असीम अनुभव हासिल हुए थे। उन्होंने अपनी व्यापक मानवीयता के कारण अभिव्यंजना के अनेक मार्गों को ढूंढ निकाला। इस्लामी कट्टरवादी द्वारा इस्लाम की विकृति के रूप में व्याख्यायित सूफीवाद से खुसरो सहजतः आकृष्ट थे। वे विशिष्ट सेकुलर संस्कृति के महान उद्बोधक थे जिन्होंने राजानुशासन के चमत्कारवाद के बाहर मानवतावाद का प्रचार किया। हम देख सकते हैं कि सूफी मत के आधार पर खुसरो ने अपनी कलात्मक एवं सांस्कृतिक धारणा को विस्तार दिया। मनुष्य समुदाय के उन्नत मूल्यों की तरफ बढ़ने की विश्वव्यापी आकांक्षा उनकी रचनाओं को परम आकर्षण प्रदान करती थी। "खुसरो ने अपनी कृतियों के माध्यम से भारतीय संस्कृति की जिस मूल चेतना को, माने सामाजिक सौहार्द को अभिव्यंजित किया था, वह हमारे सांस्कृतिक गौरव को हमेशा के लिए ज़रूर बनाये रखेग।"[3] जाहिर है। अभेद में भेद की कल्पना करते हुए खुसरो ने भारत भूमि पर धार्मिक सौहार्द की महत्ता स्थापित की।

धर्माचार्य या पुरोहित वर्ग की फतवा से अमीर खुसरो कदापि नहीं डरते थे। धर्मसत्ता से टकराने के लिए उन्होंने कई सृजनात्मक क्षमताओं का इस्तेमाल किया। वे भारत देश की सांस्कृतिक पूंजी के प्रति स्वभावतः जागरूक थे और स्वतःसंपूर्ण सांस्कृतिक अभिव्यक्तिकी तरफ पर्याप्त उत्सुकता दिखाते थे । खुसरो की प्रतिभा किसी खास प्रेरणास्रोत तक कभी सीमित नहीं थी। भारत वर्ष के तमाम धार्मिक मतभेदों और विभाजनमूलक कल्पनाओं के बावजूद उनके रचनात्मक संवाद ने अपनी सांस्कृतिक मिश्रणशीलता को बनाया रखा। उनकी कृतियों में अनुभवों तथा भावनाओं का जो अंतःसंचरण लगातार होता रहता था, वह वस्तुतः अनेक लोकभाषाओं की सहज शक्तिसे निसृत माना जाता था। "जन जीवन में प्रचलित लोक-साहित्य में स्थान दिलाने का प्रथम श्रेय हिंदवी कवि खुसरो को ही है । इतना निश्चित है कि सामान्य जनसमुदाय में प्रचलित लोकसाहित्य की श्रीवृद्धि में खुसरो ने महत्त्वपूर्ण योग दिया।"[4] इस दौर में स्पष्ट है कि अखंडता खुसरो की सृजनात्मक विविधता की बड़ी ख़ासियत रही थी।

दरबारी कवि होने के बावजूद अमीर खुसरो सत्ता व धर्म के केंद्रीकरण और संस्थानीकरण से अपने को बचाकर रखते थे। उन्होंने जीवन के सार की तलाश करने की सर्वथा अलग विधि को चुन लिया। अंतरधार्मिकता और अंतरसांस्कृतिकता की जो प्रवृत्ति सूफी दर्शन में विद्यमान थी, उनको खुसरो ने जबरदस्त आत्मसात किया। उनमें आत्मनिरीक्षण की प्रवृत्ति प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थी। इसलिए उनके सांस्कृतिक उत्कर्ष के सामने समस्त कट्टरवाद धराशायी हो जाते थे। उनके धार्मिक कर्मकांड एवं भौतिक सुखोन्माद के कृत्रिम आकर्षण निरंतर हल्के होते थे। उन्होंने पृथकतावादी कठोरता के स्थान पर जिस सांस्कृतिक घुलनशीलता को परिचित कराया, वह उनकी व्यापक लोकप्रियता का उचित कारण बन गया। निश्चय ही, प्रस्तुत संप्रीति की निर्मिति में सूफी विचारधारा का महत्वपूर्ण योगदान रहा था। इस तरह उन्होंने साहित्य में धर्म निरपेक्षता के एक महान मूल्य को प्रविष्ट किया। उतनी उत्कृष्टता के साथ उन्होंने संगीत के क्षेत्र में भी बातचीत की। यह यथार्थ है कि शास्त्रीय, लोक, कव्वाली जैसे संगीत के जितने रूपभेद उस ज़माने में प्रचलित थे उन सभी रूपों पर उनके कलात्मक व्यक्तित्व का प्रभाव पड़ा।

आम तौर पर अमीर खुसरो आदिकाल की कवि परंपरा के राजकुमार माने जाते थे। " खड़ी बोली का सर्वप्रथम व्यावहारिक तथा व्यवस्थित प्रयोग हमको अमीर खुसरो की कविता में मिलता है।"[5] वे प्रथम मुस्लिम कवि थे जिन्होंने एक साथ हिंदी, हिन्दवी और फारसी में कलम चलाई। साहित्य के इतिहास लेखकों के अनुसार खुसरो ने ही पहली बार अपनी भाषा के लिए हिन्दवी शब्द का प्रयोग किया। खुसरो ने खड़ीबोली को काव्यभाषा के रूप में विकासित करने का कठिन काम किया जिसके हेतु लोग उनको खड़ी बोली के आदि कवि कहते थे। इसका मतलब यह नहीं कि खुसरो ने ब्रजभाषा को छोड़ दिया या उसके महत्व को कम किया। उन्होंने भाषा वैज्ञानिक नजरिए से हिन्दी भाषा को प्रोत्साहन दे दिया। खुसरो ने अपनी पहेलियों एवं मुकरियों के माध्यम से हिन्दी जाति को नई साहित्यिक संवेदना का परिचय करवाया, साथ ही अपने को खड़ीबोली शलाकापुरुष कहने के लिए योग्य बनाया।

अमीर खुसरो वस्तुतः जितना गर्व फारसी पर करते थे, उतना ही हिंदी (हिंदवी) पर भी करते थे। खुसरो ने गद्य - पद्य रचनाओं में अपनी मातृभाषा को हिंदवी कहा। मसनवी कृति नुह-सिपहर में उन्होंने अपने समय की बारह हिंदुस्तानी भाषाओं की सूची प्रस्तुत की। उन्होंने ऐसी अनूठी भाषापद्धति का निर्माण किया जिसमें ब्रजभाषा व खडीबोली के साथ फारसी की शब्दावली भी मिश्रित थी। खुसरो की प्रतिभा इतनी व्यापक थी कि अरबी एवं तुर्की में उनकी रचनाशीलता नियमित रूप से कार्यरत होती थी। हिन्दी भाषा के विकास के प्रति वे अत्यधिक जागरूक थे। उनके द्वारा रचित हिन्दी किताबें इस तथ्य को स्थापित करती थीं। खुसरो प्रथम मुस्लिम कवि थे जिन्होंने हिंदी की शब्द संपदा को लगातार समृद्ध किया।" अमीर खुसरो केवल रूखे अखबार नवीस नहीं हैं बल्कि उनकी प्रतिभा ने इतिहास को भी साहित्य की श्रेष्ठता प्रदान की है।"[6] उनके अनुसार किसी भी भाषा को विचार विनिमय के सामान्य साधन के रूप में सीमित रहने की ज़रूरत नहीं, वह विशिष्ट सांस्कृतिक दायित्व के निर्वहण के लिए सर्वथा योग्य है। खुसरो ने अपने पवित्र उदारवादी भावों एवं विचारों के

माध्यम से सामाजिक और धार्मिक विषमताओं के विरुद्ध सांस्कृतिक समन्वय स्थापित करने की विराट चेष्टा की।

हिन्दू-इस्लामी समन्वित संस्कृति के प्रतिनिधि कवि खुसरो ने करीब एक सौ ग्रन्थों की रचना की, जिनमें से बीस - इक्कीस ग्रन्थ ही आजकल उपलब्ध हैं। खुसरो की हिन्दी रचनाओं का प्रथम संकलन 'जवाहरे खुसरवी' नाम से सन् 1918 ई. में मौलाना रशीद अहमद 'सालम' ने अलीगढ़ से प्रकाशित किया था, जबकि उसका द्वितीय संकलन 1922 में ब्रजरत्नदास ने नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के माध्यम से 'खुसरो की हिन्दी कविता' नाम से किया गया। यह देखना रोचक होगा कि उन्होंने कविता, पहेली, मुकरी, गजल, कव्वाली, दोहे, कहानी, संगीत लेखन, पत्रलेखन, व्याकरण, भाषाशास्त्र, शब्दकोश सरीखे सृजन के सभी क्षेत्रों में अपना योगदान दिया। उनकी 'नुहसिपहर' ऐसी रचना है जिसमें भारतीय बोलियों के संबंध में विस्तार से वर्णन किया गया है। गयासुद्दीन तुगलक के पुत्र को भाषा ज्ञान देने के उद्देश्य से लिखी गई 'खालिकबारी'- पद्यमय पर्यायवाची शब्दकोश - में तुर्की, अरबी, फारसी और हिन्दी भाषा के पर्यायवाची शब्दों को शामिल किया गया है।

अमीर खुसरो द्वारा लिखित प्रमुख फारसी कृतियों के नाम हैं, तुहका-तुस-सिग्र ,वसतुल हयात, गुर्र-तुल-कमाल, बकिया नकिया और निहातयुल कमाल। किरान-उस-सादैन, मिफ्ताहुल-फुतूह ,दवल रानी खिज्र खाँ या इश्किया, तुगलक नामा, खम्सा-ए-खुसरो, हश्त-बहिश्त, मतला उल अनवार, शीरी व खुसरो, मजनू व लैला, आइने-सिकन्दरी आदि उनकी मशहूर मसनवियाँ हैं। एज़ाजे खुसरवी और खजाइन-उल-फुतूह उनकी दो गद्य रचनाएँ हैं। अपने गुरु निजामुद्दीन के आदेश पर हिन्दवी भाषा में लिखी गई श्रीकृष्ण की स्तुति है, हालात-ए-कन्हैया। रोचकता, कौतुहल, वैचित्र्य और विनोद की सृष्टि के कारण खुसरो की पहेलियाँ और मुकरियाँ हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। उनमें सरल व कौतूहलपूर्ण बोलचाल की भाषा के साथ-साथ समाज की सुसभ्य, शिष्ट तथा व्याकरण सम्मत भाषा का उपयोग किया गया है। उनकी हिन्दी, आधुनिक खडीबोली से पर्याप्त समानता रखती है। उसको उस समय हिन्दुई या हिन्दवी कहते थे जिसमें खुसरो ने फारसी और अरबी शब्दों का उपयोग किया। वे जातीय- विजातीय सीमाओं से परे रहे थे । उनमें सांप्रदायिक-जातीय विभाजन का दुराग्रह या समर्थन नहीं मिलता। अपने उदारवादी दृष्टिकोण के कारण तद्युगीन सभी भाषाओं और बोलियों के प्रति खुसरो समादर भाव व्यक्तकरते थे। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' 'संस्कृति के चार अध्याय में लिखते हैं- "जब हम खड़ी इतिहास को उठाते हैं तब निश्चित रूप से हम मानना पड़ता है कि इस भाषा का प्राचीनतम लिखित साहित्य खुसरो का ही है।"[7] उनके साहित्य ने किसी प्रकार की संकीर्णता को प्रोत्साहन नहीं दिया !

कहना न होग कि तेरहवीं शती में भारत का सामाजिक,राजनीतिक रूप इतना व्यवस्थित नहीं था और न अखंड भारत राष्ट्र के लिए राष्ट्र-भाषा की आवश्यकता युग मानस में भाषित हुई थी, परन्तु खुसरो की लोकोत्तर प्रतिभा ने लगभग साढ़े सात सौ वर्षों के बाद की राष्ट्रीय आवश्यकता का अनुमान कर लिया था । उनको यह प्रतीत हो गया था कि रागात्मक तथा भावात्मक एकता से राष्ट्र की नींव सुदृढ़ हो सकती है और इसका वाहन हिंदवी या हिन्दी ही हो सकती हैं; फारसी, अरबी या तुर्की नहीं। तात्पर्य यह है कि खुसरो की रचनाओं का उद्देश्य केवल मनोरजन में सीमित नहीं था। उनमें लोक-जीवन और फूटी मदुल भावनाओं की सुन्दर, सुकोमल झाँकी प्रस्तुत की गई थी। उनके सावन, बाबुल और बसंत गीतों में ग्रामीण जीवन की संस्कृति, रीति-रिवाज, आशा, निराशा आदि का स्वाभाविक सौन्दर्य उभर आया है। "वे एक मुहिब्बे-वतन शायर था और अपने मुल्क की गंगा-जमनी तहजीब का सच्चा परस्तार थे।"[8] खुसरो के अपूर्व व्यक्तित्व के कमाल का यही जमाल था कि उनके कृतित्व भें फूल के साथ धूल और शूल, आशा-निराशा, कीचड़-गुलाल एक साथ धुले-मिले थे।

अमीर खुसरो का व्यक्तित्व हर दृष्टि से बहुमुखी था। तमाम व्यक्तित्व विशेषों के बीच, वे संगीत के सर्जक, वाद्ययंत्रों के आविष्कारक, रागों के प्रणेता और सुमधुर स्वरयुक्तगायक कलाकार थे। खुसरो ने भारतीय संगीत को अनन्य योगदान दिया। उन्होंने ढोलक, सितार, सहतार, तीन तार आदि वाद्य यंत्रों को आविष्कृत कर संगीत-विद्या

के भंडार को समृद्ध किया, साथ ही इरानी और भारतीय पद्धति के मेल से अनेक नवीन रागों को जन्म दिया। भारतीय संगीत जगत उपकृत है कि उन्होंने संगीत के माध्यम से पूरब-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण को जोड़ने का अथक परिश्रम किया। खुसरो ने समाज में साम्प्रदायिक सद्भाव को स्थापित करने के लिए कटिबद्ध थे। उन्होंने सूफी जीवन दर्शन, संगीत की सार्वभौमिकता, अतिसाधारण सुलभ आचरण को अपना कर जातिगत भेदों, धार्मिक कट्टरता को तोड़ने में काफी मदद की। सच है, खुसरो की मानवतावादी एवं राष्ट्रीयतावादी दृष्टिकोण से समकालीन भारत कीअखंडता को भरपूर बल मिला है जिसे उनके सूफी व्यक्तित्त्व का ही सदफल कह सकते हैं, क्योंकि निसंदेह वे एक सच्चे, पक्के सूफी थे।

फिलहाल भारत ऐसी जटिल स्थिति से गुजर रहा है जिससे आम आदमी के सारे सपने हवा हो रहे हैं। दुख की बात है कि देश की विविधतापूर्ण स्वेच्छाचरिता के मार्ग में अनेक प्रकार की बाधाएँ उपस्थित की जा रही हैं। इतिहास में प्रतिपादित महत्वपूर्ण घटनाओं के सही अर्थ को गड़बड़ करने का षड्यंत्र चारों ओर चल रहा है। 'हिंसा का अंत करने के लिए हिंसा जरूरी है' वाले नारे का समाज में खूब प्रचार सिद्ध हुआ है। आजादी पाए पचहत्तर वर्ष बीत जाने के बाद भी भिन्नता पर आधारित संकुचित दृष्टि की जंजीर से भारत वर्ष मुक्ति नहीं पा सकता है। वर्तमान समय की सबसे बड़ी विडंबना के रूप में एकरेखीयता की विभीषिका प्रत्यक्ष हुई है। इस स्थिति में इतिहास की कूपमंडूकता से बाहर आने की महान प्रेरणा प्रदान करनेवाले सांस्कृतिक चेता के रूप में अमीर खुसरो हमारे सामने खड़े हुए हैं। "खुसरो अपने समकालीन हिंदू-मुस्लिम संस्कृति का एक महान् प्रतिनिधि थे। मध्यकालीन इतिहास में उनका पूर्ण व्यक्तित्त्व समकालीन लोगों के मध्य अतुलनीय एवं अद्वितीय रूप में विशिष्ट प्रकार का दृष्टिगोचर होता है। वे उस युग के प्रतिनिधि हैं जो अपने सांस्कृतिक वैभव के लिए अत्यंत उज्ज्वल एवं प्रकाशमान है। उन्होंने युग के सांस्कृतिक जीवन को नए पथ की ओर अग्रसर किया था।"[9] अपनी आंतरिक क्षमता, तर्कशक्ति एवं सृजनात्मक कल्पना के कारण खुसरो की प्रासंगिकता उत्तरोत्तर बढ़ती दिखाई देती है।

निश्चय ही भारत की प्रशंसनीय परंपरा को पुनः उपलब्ध कराने के अविजित प्रयास में खुसरो की विरासत सहायक दीखती है। क्योंकि खुसरो ऐसे एक सृजन कर्मी थे जो चित्त की कठोरता के स्थान पर उदारता का समावेश करने की वृहत क्षमता रखते थे। भारतीय पहचान पर विशेष गर्व रखनेवाले खुसरो में मानवीय जड़ों से जुड़ जाने की तीव्र अभिलाषा प्रकट होती थी। वे सही समझते थे कि भारत की सबसे बड़ी खूबी और शक्ति उसकी विविधता है। हाल के निष्करुण और अन्यायपूर्ण सामजिक परिवेश में, लोकपरक राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की ताकत हासिल करने के लिए खुसरो द्वारा अवतरित धर्मनिरपेक्ष मूल्यदृष्टि को वापस लाना अपेक्षित है। इस सत्य की स्थापना खुद अमीर खुसरो ने की है, मैं हिन्दुस्तान की तूती हूँ, अगर तुम भारत के बारे में वास्तव में कुछ पूछना चाहते हो तो मुझसे पूछो।

सन्दर्भ सूची

1. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', हिंदी भाषा और साहित्य का विकास, पृ. 38
2. डॉ. राजनारायण राम, तूती-ए-हिंद' और उनके समकालीन, अमीर खुसरो, पृ.10
3. बाबूराम सक्सेना, उर्दू साहित्य का इतिहास, पृ. 37
4. डॉ. माताबदल जायसवाल, हिंदी साहित्य : द्वितीय खंड, 19
5. डॉ.जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, हिंदी गद्यशैली का विकास पृ.5
6. स्वर्णकिरण,अमीर खुसरो की पहेलियाँ, पृ 118
7. रामधारी सिंह 'दिनकर', 'संस्कृति के चार अध्याय' पृष्ठ 370
8. प्रो.जी.डी.एस्. शेख शिहाब,अमीर खुसरो : एक मुहिब्बे-वतन शायर, पृ.34
9. डॉ.यूसुफ हुसेन, मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति एक झलक, पृ.19

एसोसिएट प्रोफेसर , हिंदी विभाग,
महाराजास कॉलेज, एरणाकुलम

माखन लाल चतुर्वेदी की कहानियों का समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ चंद्रकांत सिंह

माखन लाल चतुर्वेदी हिंदी साहित्य की अन्यतम विभूति हैं। अपने साहित्यिक जीवन के द्वारा उन्होंने न केवल साहित्यिक यश अर्जित किया बल्कि देश को सांस्कृतिक रूप से जागृत करने का काम भी किया। हिंदी साहित्य में उनकी विशेष पहचान एक कवि के रूप में बनी किन्तु यह अवश्य जानना-समझना चाहिए कि चतुर्वेदी जी बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी हैं। काव्य-लेखन के अतिरिक्त उन्होंने कर्मवीर, प्रभा जैसे साहित्यिक पत्रों का सम्पादन भी किया। यही नहीं गद्य लेखन में भी अपना लोहा मनवाते हुए अपने वैविध्य को उन्होंने सिद्ध किया, यह और बात है कि उन्हें प्रसिद्धि कविता के द्वारा मिली। माखन लाल चतुर्वेदी विशुद्ध रूप से साहित्यिक चिंतक भर न थे, उन्होंने साहित्य को आचरण के रूप में उतारा। साहित्य उनके व्यक्तित्व की प्रतिध्वनि था। वे मानते थे कि साहित्यिक व्यक्ति को निरा वाक् शास्त्री नहीं होना चाहिए अपितु मन,वाणी और कर्म से ईमानदार होते हुए प्रखर देश प्रेमी होना चाहिए। यही कारण है कि उन्होंने देश-सेवा और सामाजिक प्रतिबद्धता के द्वारा अपने जीवन को जादुई रूपांतरण दिया। वे अंतरतम से गांधी जी का सम्मान करते थे, यही कारण है कि उनकी कविताओं एवं कहानियों में गांधीवादी आदर्श की स्पष्ट छाप है। उन्होंने जिस भी विधा में रचनात्मक लेखन किया, उसमें प्रामाणिक अभिव्यक्तिदिखाई पड़ती है, इस बात से शायद ही इनकार किया जा सके। वे भारत माता की स्वतंत्रता एवं जन साधारण की मुक्ति की स्पष्ट आवाज़ थे, उन्होंने पराधीन भारतीयों को न केवल जगाने का काम किया बल्कि देश की रक्षा हेतु अपना सर्वस्व बलिदान करने का निवेदन भी किया। गणेश शंकर विद्यार्थी के मार्गदर्शन में उन्होंने साहित्य को जनजागरण और देश-प्रेम का माध्यम बनाया। कई बार वे राष्ट्रीय चिंता के कारण जेल भी गए किन्तु निरुत्साहित न हुए। वे सच्चे भारतीय थे, यही कारण है कि उन्हें एक भारतीय आत्मा के रूप में जाना जाता है। उनके द्वारा लिखी गयी कविताओं की देश भर में चर्चा हो रही थी, उनके द्वारा लिखे गए साहित्य में भारत की संवेदनात्मक मनोभूमि का साक्षात्कार किया जा सकता है। बात यदि उनके द्वारा लिखी गयी कहानियों की करें तो ये कहानियाँ न्याय का समीकरण रचती हैं, शोषण के विषम शिविरों को तोड़ती हुई कहानियाँ जहाँ आम आदमी के पक्ष में खड़ी होती हैं वहीं इन कहानियों में भारतीयता की स्पष्ट छाप है। भारतीय परिवेश की सजग उपस्थिति के कारण उनके द्वारा लिखी गयी कहानियाँ जहाँ व्यक्ति को व्यक्ति से जोड़ने का काम करती हैं, वहीं इन कहानियों में सामाजिक परिवेश की जड़ता को व्यक्त करने का अनूठा गुर भी है। चतुर्वेदी की कहानियों में वाचालता नहीं है बल्कि अद्भुत साफगोई है। कहानियों का कथानक बुनते हुए कथाकार ने जिन ग्रामीण बिम्बों का जाल बुना है वह मन को मोह लेता है। चूँकि माखन लाल चतुर्वेदी मुख्यतः कवि हैं अतः उनकी कहानियों में भाव एवं संवेदना का अपूर्व विस्तार है। उनकी कहानियाँ पाठकों को संवेदनशीलता के अपूर्व लोक में ले जाती हैं जहाँ किसी भी प्रकार का शोषण एवं विभेद नहीं है। कहानियों का स्थापत्य ही कुछ इस तरह का है कि एकबारगी कहानियाँ अपने लक्ष्य से हटती हुई जान पड़ती हैं किन्तु जैसे-जैसे कहानियों में आरोह घटित होता है, ये युगीन सत्य को बयाँ करती हुईं शोषण के सारे ध्रुवों को ध्वस्त करती हैं। कहानियों को बुनते हुए माखन लाल चतुर्वेदी के यहाँ वह कुशलता नहीं दिखाई पड़ती जो प्रेमचंद के यहाँ दिखती है इसलिए कहानियों में कहीं-कहीं तारतम्यता का अभाव भी है किन्तु शनैः शनैः कहानियाँ जब अंत की ओर गतिशील होती हैं इनमें अपूर्व जादुई शक्ति का विस्तार होता जाता है। अद्भुत कवित्व शक्ति एवं कल्पना की समाहार-शक्ति के कारण कहानियाँ भिन्न किस्म का

सम्मोहन पैदा करती हैं जिनमें पाठक वर्ग अपना बौद्धिक अस्तित्व खोता हुआ दिखाई पड़ता है। इस तरह कहानियों का निष्कर्ष अद्‌भुत है जो पाठकों को सोचने पर बाध्य करता है। हर प्रकार के अन्याय को समाप्त करती हुईं कहानियाँ सामाजिक रोशनी की तलाश कही जा सकती हैं।

'कच्चा रास्ता' कहानी कई मायनों में विशेष है, इस कहानी में लेखक ने रामधन नामक गाड़ीवान की सहजता और सरलता को दिखाया है। उक्त कहानी में गाड़ीवान की सुराज एवं सुराजियों के प्रति श्रद्धा देखते बनती है वहीं सुराज के सूत्रधार नकली नेताओं की कलई भी लेखक ने खोलने की कोशिश की है जो गाँधीवाद की आड़ में आधिपत्य एवं हिंसा के बीज बोते हैं। माखन लाल चतुर्वेदी की गाँधीवाद में गहन आस्था है किन्तु वे नकली चरित्रों से देश की रक्षा करते हैं जो भीतर से नितांत सुविधाभोगी होते हुए वैचारिक पारदर्शिता का नाटक रचते हैं। 'कहानी मैं शैली' में लिखी गयी है, कहानी में मुख्य पात्र गांधीवादी है किन्तु ईमानदारी एवं सच्चरित्रता उसके व्यक्तित्व से ओझल है। गाड़ीवान के बैल मोहना के प्रति हिंसात्मक दृष्टिकोण उसके अहंकारी एवं आत्मकेंद्रित व्यक्तित्व को ही दिखाता है। यही नहीं गाड़ीवान के प्रति अपशब्द एवं अमर्यादित भाषा का प्रयोग उसे कहीं से भी सच्चा सुराजी नहीं दर्शाता। 'कच्चा रास्ता' कहानी की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखने योग्य हैं जिसमें सुविधाभोगी नेताओं का असली चरित्र उभरा है। कच्चे रास्ते के कारण जब गाड़ीवान को बैल हाँकने में देर होती है,ऐसे में संभ्रांत नेता द्वारा गाड़ीवान के साथ की गयी अभद्रता उसे नितांत मूढ़ और नकली व्यक्तिही साबित करती है। अमर्यादित भाषा का प्रयोग करते हुए वह कहता है - "पैसा लेकर यह हरामखोरी! तुम टिट टिट कर तमाशा कर रहे हो। और मेरा वक्त निकला जा रहा है!"

तुम जंगली क्या जानो, कि मेरे वक्त की कितनी कीमत है। रेल निकल गयी तो फिर एक पैसा न दूँगा। सौ जूते उपर से, सो अलग! उपर्युक्तपंक्तियों के माध्यम से लेखक दिखाना चाहते हैं कि जिन पर अत्यधिक भरोसा है वही भरोसे को तोड़ रहे हैं और जो सामाजिक धारा में कहीं अधिक पीछे हैं वे संवेदनशील भी हैं और मर्यादित भी। गाड़ीवान रामधन के व्यक्तित्व में भाव-प्रवण व्यक्ति की सदाशयता दिखाई पड़ती है जिसे कथाकार ने महीन ढंग से बुना है। रामधन का अपने बैल मोहना के प्रति जो प्रेम है वह निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है। वह सुराजी व्यक्ति से कहता है कि - "हूजूर, यह मेरे घर का ही बछड़ा है। मैंने इसे बेटे जैसा पाला है। मुझसे तो यह डंडा न मरा जायेगा। आपने जो कल अपने मामा के यहाँ कबरी गाय देखी थी,जिस पर आप प्यार से हाथ फेर रहे थे, वह इसी की माँ है। इसीका दूध आपने कल खाया था। इस तरह देख सकते हैं कि रामधन भले ही सामाजिक रूप से कमजोर हो किन्तु मानवीय रूप से वह अत्यंत समृद्ध है। वह जानता है कि मनुष्य के साथ किस तरह का बर्ताव किया जाना चाहिए। लेखक ने उपर्युक्त कहानी के माध्यम से दिखाना चाहा है कि गाँधीवाद को ओढ़कर अवसरवादी नेता अपने व्यक्तिगात मंसूबों को पूरा करना चाहते हैं वहीं अपढ़ जनता जो सामाजिक-राजनीतिक रूप से जागरूक नहीं है वह कहीं अधिक समझदार और प्रगतिशील जान पड़ती है। बिना वजह जानवरों को सताना आम आदमी के लिए ठीक नहीं है क्योंकि जन साधारण का प्रकृति एवं जीव जंतुओं से गहरा लगाव होता है।

माखन लाल चतुर्वेदी की कहानी 'मुहब्बत का रंग' वात्सल्य से ओतप्रोत महत्वपूर्ण कहानी है जिसमें लेखक ने रमजान नामक रंगरेज को दिखाया है, जिसके पुत्र उस्मान की असमय मृत्यु हो जाती है। वह पुत्र शोक में संतप्त घंटों खोया रहता है। लेखक ने रमजान की मनःस्थिति को चित्रित किया है। उसमान के मरने के बाद, रमजान की तबीयत कहीं नहीं लगती थी। वह कपड़े रँगता तो, हौजो के बने रंग की तरफ ही देखता रहता, और तीसरे पहर से शाम हो जाती। रँगे कपड़े सुखाते समय दरख्तों की तरफ देखता तो दरख्तों, उनकी डालियों, उनके पत्तों, और

दरख़्त पर बैठे पक्षियों की तरफ ही देखता रह जाता। पुत्र शोक में दुखी रमजान भोला नामक बच्चे को गोद ले लेता है और धीरे धीरे अपनी मानसिक यंत्रणा को भूल जाता है किन्तु बीस वर्ष बाद नियति पुनः रमजान की परीक्षा लेती है। भोला अपने किसी दोस्त की शादी में नवाब की पगड़ी के रंग की पगड़ी रंगवाना चाहता है। रमजान के मना करने के बाद भी जब वह नहीं मानता और अंत तक जिद करता है, ऐसे में रमजान पुत्र मोह में नवाब की पगड़ी का रंग भोला की पगड़ी को दे डालता है। जब नवाब भोला को अपनी पगड़ी की तरह की पगड़ी में देखता है, वह गुस्से से भर उठता है। यहाँ लेखक ने दिखाना चाहा है कि सामाजिक असमानता का जाल इस तरह हावी है कि मनुष्य प्रदर्शन एवं अहंकार में ही उलझा हुआ है। उसे किसी की प्रतिष्ठा एवं अवमानना से कुछ भी नहीं लेना-देना। व्यक्ति की थोथी नैतिकता एवं प्रदर्शनप्रियता को कहानीकार ने वाणी देने का काम किया है। माखन लाल चतुर्वेदी ने दिखाया है कि फरमा खां अत्यंत रोष भरे स्वर में रमजान से मुखातिब होता है जो उचित नहीं जान पड़ता। नवाब रमजान की बेईज्जती करता हुआ पूछता है -"बेईमान, साफ-साफ बता। तेली के लौंडे की पाग का रंग, और बनक, दरबार की पाग के रंग की क्यों है? इस पर रमजान पुत्र प्रेम में प्रत्युत्तर देता है कि 'खता माफ हो सरकार, यह नमक का, रोटियों का रंग है, और वह मुहब्बत का रंग है। वह मेरे बेटे की तरह है । रमजान की बात सुनकर नवाब न केवल उसे गालियाँ देता है बल्कि हंटर से पीटता भी है। उक्तकहानी को माखन लाल चतुर्वेदी जी ने अत्यंत भावपूर्ण ढंग से बुना है। स्वार्थ केंद्रित समाज में यह कहानी एक उदात्त उदाहरण प्रस्तुत करती है। जहाँ रमजान और भोला का रिश्ता भले ही खून का रिश्ता न हो किन्तु वह ख़ून के रिश्ते से भी महान जान पड़ता है।

'बेगार का दण्ड' कहानी में माखन लाल चतुर्वेदी जी ने गोकुल प्रसाद साहू के कृत्रिम व्यक्तित्व को दिखाया है। गाँधीवाद की आड़ लेकर शोषक वर्ग जिस तरह आम जनता के बीच लोकप्रिय हो रहे थे उन्हें लेखक ने उक्त कहानी के बहाने दिखाया है। देशभक्त कहलाने वाले ये छद्मजीवी न केवल गरीब जनता का शोषण करते हैं बल्कि कुत्सित व्यभिचार द्वारा नारियों का शील भी भंग करते हैं। रमिया नामक मेहनती स्त्री जो पति की मृत्यु होने पर अपने भाई के घर रहती है और श्रमपूर्ण ढंग से अपने दायित्वों का निर्वहन करती है, अंततोगत्वा उसे साहू की भोगवादी दृष्टि का शिकार होना पड़ता है। लेखक ने दर्शाया है कि अच्छे चरित्र वाली रमिया अपनी ही भाभी के कुचक्र में फंस जाती है। परिवार में घट रहे ननद-भौजाई के पारस्परिक संबंध के बहाने लेखक ने भारतीय समाज की विकृतियों को दर्शाया है। रमिया की भाभी और गोकुल प्रसाद के अनैतिक रिश्ते को दर्शाते हुए लेखक ने भारतीय समाज की पतनशील मानसिकता को लक्षित किया है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने यह भी दिखाना चाहा है कि परंपरा के नाम पर स्त्रियों का जो शोषण होता है, उसमें स्त्रियों की ही भागीदारी होती है। अपने पति के दुर्व्यवहार और चरित्र पर गोकुल की स्त्री जिस तरह परदा डालती है उसे देखकर यही लगता है कि शोषण एवं अनाचार को बढ़ाने में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। साहू की पत्नी का सबकुछ जानते हुए भी मौन रहना नागवार-सा लगता है। रमिया के बेटे का साहू की पत्नी के सन्दर्भ में वक्तव्य देखने योग्य है। साहू-बहु इस रहस्य को जानती थीं। वे इस घटना पर नाराज भी खूब थीं। उनकी आँखें और पिसते हुए दांत साफ कह रहे थे। किन्तु वे माँ के मुँह से सुनकर, अपने मर्द की बदनामी सहन नहीं कर सकती थीं। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने बेगार के बहाने यौन उत्पीड़न का जो वीभत्स रूप खींचा है वह न केवल सोचने को बाध्य करता है बल्कि भीतर ही भीतर हांट भी करता है। यहाँ चमड़ी के आधार पर व्यक्ति और व्यक्ति में तो फर्क दिखता ही है,साथ ही सामाजिक स्तर पर भी स्खलित लोगों की विशेष पहचान दिखाई पड़ती है। लेखक माखन लाल चतुर्वेदी की कहानियों को पढ़ते हुए यही लगता है

मानो वे भारतीय समाज की यथास्थितिवादिता पर प्रहार कर रहे हों। अपने सृजन-कर्म के बहाने वे एक ऐसा समाज निर्मित करना चाहते थे जो पूरी तरह प्रगतिशील हो और एकजुट होकर अंग्रेजों की प्रभुसत्ता का सामना कर सके। उनकी पूरी कोशिश थी कि समूचे भारत से जड़ता और आडम्बरों को उखाड़ फेंका जाए जिससे कि भारत को स्वाधीनता दिलाने में मदद मिल सके।

बिरन,मेरो सावन बीतो जाय ! अत्यंत मार्मिक कहानी है। प्रस्तुत कहानी में माखन लाल चतुर्वेदी जी ने दिखाया है कि बम बनाने के मुकदमे में पटवारिन, उसके पति और देवर को सजा हो जाती है। देवर के कृत्य की सजा निरपराध पति-पत्नी को मिलती है। आपराधिक गतिविधियों से दूर रहने वाले दम्पति क्रूर नियति का शिकार बनते हैं। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने यातनागृहों के रक्षकों एवं पहरेदारों की हैवानियत को दिखाया है जो झूठ को सच और सच को झूठ में तब्दील करते हैं। यही नहीं स्त्रियों की देह नुमाईश करने वाले रक्षकों के झूठे चेहरों को भी कहानीकार ने दिखाना चाहा है। कहानी की नायिका पटवारिन के माध्यम से जेल की यातनामयी स्थिति उजागर होती है। पटवारिन अत्यंत उपेक्षापूर्ण ढंग से कहती है- "जेल में मैंने जाना कि वहाँ स्त्री नाम की चीज़ सुरक्षित रहना प्रायः असंभव है। जेलर, नायब जेलर, हेड वार्डर,वार्डर और नम्बरदार ये सब काले साँपों के नाम हैं, जो मरजी पर चलने पर अस्मत माँगते हैं और मरजी पर न चलने से कष्ट देते हैं। कायदे किताबों में लिखने की चीज़ हैं, किन्तु जेलों में तो जेलर ही कायदा है। प्रस्तुत कहानी भारतीय समाज की विडम्बनापूर्ण स्थिति को दिखाती है, जहाँ स्त्री उत्पाद की तरह है जिसका पितृसत्तात्मक समाज उपयोग एवं उपभोग करना चाहता है ।

'महँगी पहिचान' कहानी गांधीवादी आदर्शों की आड़ में छद्म जीवी पहचान की कहानी है। लेखक ने दिखाया है कि पैसेंजर गाड़ी में जाली नोट का प्रसार गांधीवादी विश्वासों की हत्या है। जिस समय लेखक माखन लाल चतुर्वेदी लेखन कार्य कर रहे थे वह युग संक्रमण का युग था। गांधीवादी मूल्यों को लेकर काम करने वाले युवकों-चिंतकों की अधिकता थी वहीं समाज में ऐसे लोग भी कार्य कर रहे थे जिन्होंने अपनी सुविधा के लिए गांधी के सिद्धांतों को ओढ़ रखा था। लेखक इस कहानी में दिखाते हैं कि गांधी के स्वप्न बड़े हैं किन्तु गाँधी की वैचारिक आड़ लेकर कई लोग अपनी कुंठा, मक्कारी एवं झूठ का अप्रत्याशित प्रसार कर रहे थे। लेखक ने ऐसे झूठे बुद्धिजीवियों एवं चिंतकों पर प्रहार किया है। वे चाहते हैं कि एक ऐसा समाज बने जहाँ विभेद और अन्याय का खात्मा हो और सच में मूल्य आधारित चिंतन का संवर्धन हो सके। लेखक माखन लाल चतुर्वेदी स्वयं गांधीवादी थे और गांधीवादी ढंग से समाज में रूपांतरण चाहते थे किन्तु जहाँ भी उन्होंने गाँधी के सिद्धांतों की अनुचित व्याख्या या मनमाना प्रयोग देखा, उसपर उन्होंने दो टूक ढंग से बात की। उनके लेखन को गाँधीवादी लेखन कह सकते हैं, जहाँ सत्य के रास्ते पर समाज को ले चलने का भाव है। उन्होंने अपनी कहानियों के द्वारा भारतीय स्थितिवादिता को तोड़ने का प्रयास किया, उनकी कहानियाँ भारत को आतंरिक रूप से मजबूत करने वाली कहानियाँ हैं जिससे कि भारत अंग्रेजी प्रभुसत्ता को उखाड़ फेंकने में सक्षम हो सके। माखन लाल चतुर्वेदी एक संवेदनशील कथाकार हैं, उनकी कहानियों की समीक्षा होनी चाहिए तभी उनकी रचनात्मकता एवं सृजन-लोक की विस्तृत एवं समुचित व्याख्या हो सकती है।

प्रोफेसर (हिंदी)
हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला
धौलाधार परिसर-एक, जिला-काँगड़ा
हिमाचल प्रदेश-176215
ईमेल- chandrakants166@hpcu.ac.in
Chandrakants166@gamail.com

स्त्री मुक्ति संघर्ष की दस्तावेजः 'शेष कादंबरी' उपन्यास

मिनी.एन

स्त्री मुक्ति आन्दोलन स्त्री के उपर हो रहे सारे दमन की प्रतिक्रिया है। सरल शब्दो में कहे तो स्त्री विमर्श का अर्थ इतना है कि स्त्री को केंद्र में रखकर उसके जीवन के हर आयाम को लेकर गंभीर अवलोकन करना। स्त्री का दमन, शोषण, उत्पीडन, उपेक्षा, दर्द जैसे स्त्री जीवन के हर पहलू पर चर्चा करते हुए उसको अपने जीने के अधिकारों के प्राप्त कराने का आंदोलन; वही है स्त्री मुक्ति आंदोलन। स्त्रीवाद कई आशयों, तत्वों एवं संकल्पनाओं का वैचारिक समुच्चय है। इसका अर्थ ऑक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी में यो दिया गया है कि उन्नीसवीं सदी के मध्यकाल से लेकर यूरोप में विकसित स्त्री अधिकारों का प्रस्ताव। कहा जाता है कि 25 अप्रैल 1895 की 'अत्तेन्वम' नामक पत्रिका में 'फेमिनिज्म' शब्द का पहला प्रेयोग हुआ। जिसका अर्थ है- 'अपनी स्वयत्तता को स्थापित करनेवाली।'

समाज से उपेक्षित रही स्त्री अपने दर्द और मुश्किलों को व्यक्त करने के लिए साहित्य का आश्रय लेती है।हिंदी साहित्य में 'स्त्री विमर्श' की शुरुआत उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध एवं बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में हुई। स्त्री-जीवन हिंदी के आरंभिक उपन्यासों का भी मुख्य विषय था।

अलका सरावगी समकालीन रचनाकारों में प्रमुख है। प्रसिद्ध कथा शिल्पी डॉ. अलका सरावगी ने अपनी लेखनियों के जरिए स्त्री के सबल और दुर्बल पक्षो को मान्यता देने की कोशिश की। इनका पहला उपन्यास 'कलि-कथा :वाया बाईपास' महत्वपूर्ण रचना है। इसके अनूठे शिल्प सौंदर्य विशिष्ट है। इस उपन्यास में कलकत्ता के पृष्ठभूमि को लेकर अकाल के समय की महिलाओं के त्रासदी पूर्ण जीवन के मार्मिक चित्रण किया।

'शेष कादंबरी' अलका सरावगी का दूसरा उपन्यास है। उपन्यास स्त्री की समस्याओं पर प्रश्न करके शुरू होता है और स्त्री के अस्तित्व की तलाश की पूर्ति पर खत्म होता है। उपन्यास का मूल शब्द है 'आइडेंटिटी क्राइसिस'। उपन्यास में मुख्य और गौण रूप में ज्यादातर स्त्री पात्र ही है। जितनी भी स्त्रियों का चित्रण इसमें हुआ है वह किसी न किसी तरह शोषण का हिस्सा है। सचमुच 'शेष कादंबरी' स्त्री विमर्श का सशक्त उदाहरण है।

उपन्यास की कथा रूबी गुप्ता उर्फ रूबी दी नामक एक सत्तर साल की औरत की है जो उम्र के इस पड़ाव पर अपने अस्तित्व एवं पहचान की खोज कर रही है। उपन्यास रूबी दी के जीवन से गुजरकर कलकत्ते के इतिहास एवं वर्तमान को जाँचता है।रूबी दी 'परामर्श' नामक एक संस्था चलाती है जो दुखियारी स्त्रियों को सांत्वना देने का प्रयास करती है साथ ही साथ अपनी 'आइडेंटिटी क्राइसिस' को दूर करने का प्रयास भी करती है। जीवन की अंतिम पड़ाव तक आते आते वह अपना जीवन जीना शुरू करती है। अपने ढंग से जीवन बिताकर खुशी महसूस करती हैं।

फ्रेंच लेखिका सिमोन द बोउवार ने अपने ग्रन्थ 'सेकंड सेक्स' में स्वीकार किया कि स्त्री पैदा नही होती, बल्कि बनायी जाती है। भारतीय समाज में स्त्री के लिए कुछ नियम होते हैं। पितृसत्तात्मक समाज स्त्री को अपने द्वारा बनाए गए नियमों के अंतर्गत रखना चाहता है। इसलिए समाज और परिवार एक साथ मिलकर स्त्री को बनाते यानी स्त्री का निर्माण करते हैं।

उपन्यास में रूबी दी को समाज तथा परिवार ने एक व्यक्तित्व प्रदान किया है। दूसरों द्वारा किये गए व्यक्तित्व के कारण वह अपने आप में कोई नहीं है।समाज में स्त्री के लिए कुछ अलिखित नियम होते हैं। वह क्या करे क्या न करे कहे-न कहे, रहे-न रहे ये सब उसके हाथ में नहीं होते। इन नियमों के चंगुल में

फँसकर अधिकांश स्त्रियों की जिंदगी सीमित रह जाती हैं। रूबी दी कि कहानी यानी उसके व्यक्तित्त्व की पहचान उसकी स्मृतियों द्वारा व्यक्त होती है। बारह वर्ष की आयु में रूबी ने अपने लोरेती स्कूल की सिस्टर मार्गरेट से पूछा: "वर यु एवर इन लव, सिस्टर? फिर सिस्टर ने रूबी को बहुत प्यार से जो सबक दिया था, उसे वे कभी नहीं भूली- किसी से कोई ऐसी बात कभी मत पूछो, जिससे वह असुविधा में पड़े।"[1] इस सबक को याद रखकर रूबी दी किसीसे भी उनके निजी जीवन के बारे में कोई सवाल न कर पायी, न पिता से और न पति से भी। "न वे कभी पति से कोई असुविधाजनक प्रश्न पूछ पाई और न ही अपनी दोनों बेटियों से, जिन्होंने अपने जीवन के सबसे महत्वपूर्ण निर्णय में उन्हें शामिल तक नहीं किया।"[2]

रूबी दी अपनी क्लाइंट से भी हर बार प्रश्न पूछा चाहती थी लेकिन कभी नहीं पूछ पायी, क्योंकि जिस दुनिया में वे बड़ी हुई थीं, इस प्रकार के प्रश्न पूछना, कोई निजी बात बताना ,इन सब का कोई विशेष मकसद नहीं है। किसी से पूछना अमर्यादित व्यवहार माना जाता है। समाज में ऊँची आवाज़ में बोलना भी बेटी के लिए अपराध की बात है। जब रूबी एक बार उंची आवाज में बोली तब पिताजी ने कहा था- "कृष्ण, कृष्ण! ऐसे नहीं बोलते। क्या तुम भी इतनी उंची आवाज में बोलोगी बेटी? उस दिन के बाद रूबी दी ने कभी किसी से बात करते समय अपनी आवाज ऊँची नहीं की।"[3] तब से रूबी चुप होने लगी।गौरी के शब्दों में कहे तो मौनी बाबा बन गई, नहीं नहीं,महात्मा गांधी बन गई। रूबी के ऊपर होनेवाले आरोप पर भी वह चुप रहती है।

अपने मौन के कारण रूबी दी को आजीवन साँस से ताने सुनने पड़े थे कि वह सतापीढ़िया शाह की बेटी है। साँस- जेठानी के ताने उसका पढ़ा-लिखा सांस्कारिक मन स्वीकार नहीं कर पाता था। बड़े परिवार से होने के कारण रूबी दी को शारीरिक तौर से कोई प्रताड़ना नहीं सहना पड़ा लेकिन मानसिक घाव ही काफी थे कि रूबी को 'सुसाइडल' होना पड़ा और मनोचिकित्सा की जरूरत पड़ी।ये सब समाज तथा परिवार की इन बेड़ियों के कारण हैं।

नई पीढ़ी की स्त्रियाँ समाज तथा परिवार के अलिखित नियमों को तोड़ना चाहती हैं। वे दूसरो के बनाए संस्थानों द्वारा प्रदान किए गए व्यक्तित्त्व के अंतर्गत जीवन बिताना नहीं चाहती है। कादम्बरी उपन्यास में नई पीढ़ी की प्रतीक है। वह अपनी इच्छा के अनुसार काम करती है, दोस्त गौतम के साथ रहती है। नई पीढ़ी खुद अपने व्यक्तित्त्व का निर्माण करती है। कादम्बरी के कारण रूबी दी के व्यक्तित्त्व में अनेक बदलाव आते हैं। पहले से ज्यादा उसका दिल बड़ा हो गया। रूबी पहले से अधिक बात करने लगी। वह अपनी इच्छा के अनुसार हर दिन बिताने लगी तब वह अपने जीवन की यात्रा में एक नयी शुरुआत महसूस करती हैं।

'शेष कादम्बरी' केवल स्त्री विमर्श की महत्वपूर्ण रचना मात्र नहीं, बल्कि स्त्री मुक्तिसंघर्ष की दस्तावेज भी हैं।आज समाज बदल रहा है। पुरुषसत्तात्मक समाज में मनुवादी चिंतन के विरुद्ध आवाज़ उठाकर स्त्री प्रति दिन आगे बढ़ रही है। स्त्री मुक्ति कोई कल्पना मात्र नहीं है, हमारे नजदीक की सच्चाई भी है।उसकी प्राप्ति के लिए सबसे पहले हमारी मानसिकता में भी बदलाव लाना चाहिए। मानसिकता में बदलाव शुरू हुआ है लेकिन लक्ष्य प्राप्ति के लिए सार्वभौमिक धरातल पर प्रयत्न की जरूरत है। इस उपन्यास के माध्यम से अलका सरावगी जी स्त्री अस्मिता के प्रति जाग्रति पैदा करने की कोशिश की है, उसमें वे सफल हुईं।

संदर्भ :

1. अलका सरावगी-शेष कादम्बरी, पृ-9
2. वहीं, पृ-9
3. वहीं, पृ-17

संदर्भ ग्रंथ सूची

1.शेष कादम्बरी - अलका सरावगी- राजकमल प्रकाशन, प्र.लि - नई दिल्ली, सं-2001

शोधछात्रा
राजकीय महिला महाविद्यालय, तिरुवनंतपुरम

मोहन राकेश के नारी पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

शांती सी लोपस

मनुस्मृति में मनु ने नारी के बारे में कहा है कि 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता' भारतीयों की समग्र जीवन पद्धति और परिवार का आधार नारी ही है। नारी जननी है और पुरुष की जीवन संगिनी भी।

नयी-कहानी आन्दोलन के प्रमुख कहानीकार मोहन राकेश की अधिकतर कहानियों में उन्होंने बदलती परिस्थितियों के अनुकूल नारी जीवन की मूल संवेदनाओं को अभिव्यक्तकिया है। राकेश जी प्रगतिशील विचारों के व्यक्ति थे। अतः उनकी कहानियों के नारी-पात्रों में एक विशिष्ट प्रकार का द्वन्द्व देखने को मिलता है। उनकी कहानियों के नारीपात्र उपर से हँसती हैं, लेकिन भीतर से वे किसी-न-किसी द्वन्द्व से ग्रस्त हैं। किसी भी प्रकार का निर्णय लेने में उनकी कहानियों के नारी-चरित्र घबराते हैं तथा लिए हुए निर्णय से वे कई बार पीछे हट जाती हैं। यही इन नारी-पात्रों की विडम्बना है। मध्यवर्गीय मानसिकता को लेकर जीते ये नारी पात्र सदा अप्राप्य को प्राप्य करने के लिए उत्तेजित रहने के कारण द्वन्द्व-ग्रस्त स्थिति से उन्हें गुजरना पडता है और जो उनके अत्यंत निकट थे वे भी मुट्ठी से निकल जाते हैं। मोहन राकेश की अधिकांश नारियाँ अधूरेपन की पीडा को झेलती हैं। और अपनी मूल-संवेदनाओं को पूरी तरह अभिव्यक्तकरने में भी असमर्थ दिखाई देती है। "मोहन राकेश का नारी-संसार एक संश्लिष्ट और जटिल संसार है, इसलिए उनकी नारियाँ इकट्टी न होकर, कई पर्तोंवाली नारियाँ हैं। राकेश इनके भीतर झांकते हैं और उनका आंतरिक विश्लेषण करते हैं वे उनकी मानसिकता को, उनके मनोभावों को पकड़ते हैं, सूक्ष्म स्तर पर और इनका प्रामाणिक विवेचन करते हैं।"[1]

राकेश जी की सहानियों में कुछ नारी-पात्र अन्तर्मुखी व्यक्तित्त्व के हैं, इनका मनोजगत् कुछ अनोखे क्षणों में धीर-धीरे पाठकों के सामने उभर आता है। 'मिस पाल' कहानी में कहानीकार ने मिसपाल के माध्यम से नारी का असंतोष, अकेलापन और संवेदना को गहरे रूप में दिखाया है। एक सुशिक्षित, कामकाजी नारी मिकपाल के मन में बचपन से ही असुरक्षा की भावना थी। वह एक अधेड उम्र की नारी है। दिल्ली के सूचना-विभाग में काम करती है। कुरूपता के कारण वह समाज और सहकर्मियों के बीच उपहास का पात्र बनती है। वह अपनी कुरूपता को छुपाने का प्रयास भी करती है लेकिन यह प्रयत्न उसे और भी कुरूप बना देता है। अतः उसके सहकर्मी उसपर हर वक्तमज़ाक करते हैं और उसके रंग-रूप पर कई प्रकार की टिप्पणी भी करते रहते हैं। अपने मोटापे और कुरूपता के कारण समाज के लोग और सहकर्मियों के बीच उपहास का पात्र बन जाने पर उसके मन में कुंठा और हीनता की ग्रंथियाँ हो जाती हैं। बचपन में माता-पिता और परिवार के स्नेह से वंचित होने के कारण वह दिल्ली जैसे महानगरों में अकेली रहती हैं। निराशा अकेलापन, ऊब हीनता, कुंठा और तनाव ग्रस्त मनःस्थिति से गुज़रते हुए सहन जीवन बिता नहीं सकती। दिल्ली के मनमुटाव वातावरण से परेशान होकर वह नौकरी छोडकर हर पल वहाँ से पलायन करना चाहती है। वह एसी दुनिया में जाना चाहती है। "जहाँ यहाँ की ही गंदगी न हो और लोग इस तरह की छोटी हरकते न करते हों।"[2] असुरक्षा की भावना के कारण वह पुरुषों से डरती थी। स्वभाव से वह आत्मकेंद्रित अंतर्मुखी नारी है। वह कुल्लू के पास के रायसन गाँव में आकर बस जाती है लेकिन नए परिवेश और नए लोगों के बीच भी अपनी पूर्ववर्ती स्थिति को वह सामने पाती है। यहाँ उसका एकाकीपन अधिक गहरा हो जाता है। और जीवन में निरसता और व्यर्थताबोध बढ़ जाने के कारण वह अपने प्रति लापरवाह हो जाती है। अपनी हीनता ग्रंथी के कारण जीवन की सार्थकता को वह नहीं ढूँढ़ पाती। रणजीत से बात करते समय उसके जीवन की पीड़ा, हीनता-ग्रंथि, अकेलापन,कुंठा, व्यर्थताबोध आदि बढ़ती गहराई से उभरकर आते हैं। "मैं बदकिस्मत हूँ रणजीत। हर लिहाज से मैं बहुत ही बदकिस्मत हूँ।"[3]

"मैं सोचती हूँ रणजीत कि मेरे जीने का कोई भी अर्थ नहीं है।"[4] प्रस्तुत कहानी में कहानीकार ने एक कुरूप

नारी के अंतर्मन का विश्लेषण करते हुए उसके मन की स्थिति एवं जीवन की विडम्बनाओं को मनोवैज्ञानिक और सशक्तढंग से प्रस्तुत किया है। अविवाहिता युवती मिसपाल की वेदनामय निरीहता और उसके जीवन का कारुणिक छूछापन कहानीकार की जूदूभरी लेखनी से साकार हो उठा है। उसकी भावनाएँ भीतर ही भीतर घुटती है, दबती है और एक तरह की विकृति का रूप ले लेती भी है।

'सीमाएँ' कहानी की नायिका उमा वयः संधि से गुजरती हुई नवयुवती है। वह खुद ही असुन्दर मानने के कारण हीन-भावना से ग्रस्त है। यह हीनता उस पर हमेशा हावी होती रहती है और इसके कारण सुंदर और अच्छे गहने और वस्त्र भी उसपर नहीं सुहाते। "उसे लगता था वह देखने में सुंदर नहीं है। वह जब भी शीशे के सामने खडी होती तो उसके मन में झुंझलाहट भर आती। उसका मन होता कि उसकी नाक लंबी हो, गाल ज़रा हल्के हों, ठोडी आगे की ओर निकली हो और आँखें थोड़ी और बड़ी हों। परन्तु अब यह परिवर्तन कैसे होता? उसे लगता कि उसके प्राण एक गलत शरीर में फँस गए हैं। जिससे निस्तार का कोई चारा नहीं, और वह खींजकर शीशे के सामने से हट जाती।"[5] हीन भावना से ग्रस्त उमा सोचती है कि उसकी असुन्दरता को देखकर उसे कौन प्रेम करेगा? परिणामतः वह हताश और निराश होकर अकेलेपन में ही ज़्यादा रहती है और किसी के यहाँ पर भी आने-जाने से संकोच करती है। "अकसर एकांत और अकेलेपन की परिस्थितियाँ व्यक्ति के भावात्मक विकास को रोककर उसे भावी सुख से दूर ही नहीं करती, बल्कि समाज से उसका अलगाव और बढ़ा देती है"।[6]

टोडरमल का यह कथा उमा की मनस्थितियों को ज़्यादा स्पष्ट कर देती है। हीन-भावना से ग्रस्त उमा को लगता है कि बनाव शृंगार करने के बाद और अच्छे वस्त्र और आभूषण पहनने के बाद भी अपनी कुरूपता उसे बहुत दुखी करती है। जब वह अपनी सहेली के साथ एक विवाह में सम्मिलित होती है तब अपनी सखियों के साथ रहते हुए भी उसकी हीन-भावना बड़ी प्रबलता से साथ जाग उठती है तो वह हताश और निराश होकर वहाँ से लौट आती है। मन्दिर में वह देखती है कि एक युवक उसकी ओर लगातार देखता रहता है तो उसे लगता है कि उसमें भी नारित्व का आकर्षण है तथा उसकी ओर भी कोई प्रेम से देख सकता है। "उमा के शरीर में लहू का दबाव बढ़ गया। हृदय की गति बहुत तेज़ हो गई। उसकी आँखें केले के खंभों पर से हटकर सजी हुई सामग्री पर से फिसलती हुई फिर वहीं टकराई। वह अब भी उसी तरह देख रहा था। उमा के लिए पैरों का संतुलन बनाए रखना कठिन हो गया।"[7] भीड में वह युवक उमा का स्पर्श करता है तो वह एक अपूर्व आनन्द की अनुभूति में लीन हो जाती है। बाद में उमा समझती है कि उस युवक ने उसकी सोने की जंजीर चुराने के लिए ही उसको स्पर्श किया, उसके सौंदर्य की वजह से नहीं। इस कहानी में कहानीकार ने उमा की अकेलेपन और खालीपन की हीनग्रंथि को बड़े ही सहज और वास्तविक रूप में अभिव्यक्तकिया है।

उमा के चरित्र की विशेषता यह है कि पैतृक संपत्ति से अनुगृहीत होते हुए भी कुरूपता जन्य हीनभावना के कारण वह अपनी ज़िन्दगी में खालीपन की गोद में हताश रहने को बाध्य होती है।

'आखिरी सामान' कहानी के मिसेज़ बेला भंडारी कई श्रेष्ठ गुणों से युक्तनारी पात्र है। फिर भी महत्वाकांक्षी पति के कारण उसे अपने जीवन में निस्सहाय और निराश्रय रहकर कटु अनुभवों से गुजरना पडता है। उसके चरित्रहीन पति की रक्षा के लिए उसके पास कोई और चारा नहीं है, सामान की नीलामी हो चुकने पर उसकी मनस्थिति है कि "सीढ़ियाँ उतरते हुए उन्हें लगा, जैसे वे आप नहीं उतर रहीं, घर का आखिरी सामान नीचे पहुँचाया जा रहा है।"[8] वह भी एक निष्प्राण सामान हो चुकी थी। मिसेज़ बेला भंण्डारी के मानसिक संत्रास, अंतर्द्वन्द्व, आन्तरिक पीड़ा, घुटन और अकेलेपन को राकेश जी अपनी तीखी लेखनी से मनोविश्लेषणात्मक ढंग से चित्रित करने में अत्यंत सफल हुए हैं।

मोहन राकेश की बहुचर्चित कहानी 'फौलाद का आकाश' में वैवाहिक जीवन की समस्याओं के साथ कहानी की प्रमुख नारी पात्र मीरा की मानसिक स्थितियों का भी सूक्ष्मता से अंकन किया है। सिर्फ 'केरियरिस्ट' व्यावसायिक स्वार्थी पति रवि के लिए, पत्नी मीरा सिर्फ घर संभालने के लिए खाना बनाने के लिए और शारीरिक भूख मिटाने के लिए नियत साधन मात्र है। लगातार दस सालों से मीरा

अत्यंत बोझिल और उदासी से भरी ज़िन्दगी से गुज़र रही है। रवि के साथ वह अपने व्यक्तित्व को घुला-मिला नहीं पा सकती है। रवि जानबूझकर ही मीरा की ज़िन्दगी को रूखी बना देता है। फिर भी पति के प्रति मीरा का लगाव कम नहीं होता, वह पति से भावुकता भरी बातें करना चाहती है। जिसकी ओर रवि की कोई रुचि नहीं। मीरा अंतरंग से अंतरंग क्षणों में रवि की बातें सोचकर उलझी रहती है। वह मन ही मन अपने को रवि से बिलकुल अलग पाती है। "मीरा को लगता है कि उससे प्यार करते वक्तभी वह मन-ही-मन चुंबनों की गिनती करता रहता होगा। तभी तो न उसका आवेश एक चरम सीमा पर पहुँचकर एकाएक रुक जाता था। "प्रेम-रहित काम-संबन्धों से नारी को तृप्ति नहीं मिल सकती और उसका तनावग्रस्त होना स्वाभाविक् हो जाता है।"[9] रवि की फैक्टरी में हुए हड़ताल का हल ढूँढने के लिए मंत्री राजकृष्ण आता है। जो कॉलेज में मीरा के सहपाठी और मित्र थे। रवि के साथ के दाम्पत्य जीवन में एकरसता से ऊबकर जीने के लिए विवश मीरा राजकृष्ण से मिलकर एक प्रकार की आत्मीयता महसूस करती है। लेकिन पति के आदेशानुसार मीरा राजकृष्ण का सत्कार करने को सरकीट हाउस जाती है वहाँ वह राजकृष्ण की वासना की शिकार भी बनती है। "बौद्धिक भावना शून्य पुरुष को पति के रूप में वरण कर भावुक नारी को लगता है वह फौलाद के आकाश के नीचे रह रही है, जहाँ प्यार की गर्मी और वात्सल्य की आर्द्रता और सरसता की संभावना ही नहीं है। (इसलिए बौद्धिक दृष्टि से अस्वीकार कर भी) प्रेमी की प्यार भरी बाहों की उष्णता का विरोध नहीं कर पाती।"[10]

नई कहानी के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर मोहन राकेश ने अपनी कहानियों में स्वतंत्र भारत की आर्थिक सामाजिक विषमताओं के बदले मानवीय संबन्धों और टूटते जीवन मूल्यों में नारी के जीवन में आए द्वन्द्व, संघर्ष और मानसिक विघटन को यथार्थ रूप में चित्रित किया है।

बदली हुई परिस्थितियों के साथ अपने को बदलने में असमर्थ हो जाने पर दाम्पत्य जीवन में मीरा ऊब चुकी है। इस प्रकार मीरा के अन्तर्द्वन्द्व को और उसकी संपूर्ण टीस को मार्मिकता से अभिव्यक्त करने में कहानीकार सफल हुए हैं। पति और मित्र के लिए मात्र 'रिलाक्स' होने का माध्यम बनकर जीने के लिए बाध्य हो जाने पर विवश नारी की व्यथा, पीड़ा, घुटन, अन्तर्द्वन्द्व और अकेलेपन का सूक्ष्म तथा स्पष्ट चित्रण कहानीकार ने मीरा के माध्यम से किया है।

'गुँझल' कहानी की नायिका कुंतल महत्वाकांक्षी नारी है। उसको कई आशा आकांक्षाएँ है। वह अपनी आशाओं को दबाकर रखती है। लेकिन उसका पति चंदन बेकार झेल रहा है। इसलिए वह अपने पति के साथ बड़ी मुश्किल से जीवन बिताने के लिए बाध्य हो जाती है। अतः वह शादी के बाद भी स्वतंत्र जीवन में रुचि रखती है। उसको लगता है कि चंदन के साथ जीने से अपनी आशाएँ व्यर्थ हो जाएँगी। वह अपने अस्तित्व को कुचला हुआ महसूस करती है। "क्या उसने कभी सोचा था कि उसे जीवन में अपने ही अंदर के संघर्ष से इस तरह पिसना पडेगा? कहाँ यूनिवेर्सिटी के वे दिन, जीने का वह उत्साह और मन की बड़ी-बडी आकांक्षाएँ, और कहाँ आज की यह घिसटती छटपटाती ज़िन्दगी। क्या उसके अंतर्द्वन्द्व को उसके अतिरिक्त और कोई भी समझ सकता था।"[11] अब वह अपने पति से अलग होने का फैसला ले चुकी है। लेकिन चंदन एक दूसरे से जुडकर जीना चाहता है। और यह भी चाहता है कि दोनों के बीच की सारी बातें साफ हो जाएँ। लेकिन कुंतल अपनी नारी जन्य अहं और जिद्द के कारण अलगाव की स्थिति में जाने का निर्णय ले चुकी थी। कुंतल चंदन से अपना मत व्यक्त करती है- "हम अपने लिए न तो कुछ चाहते हैं और न ही इस विषय में हमें कोई बात करना है।"[12] एक अहंवादी महत्वाकांक्षी नारी की मानसिक असहिष्णुता की भावना को पाठकों के सामने प्रस्तुत करने में कथाकार सौ फीसदी सफल हुए हैं।

'आर्द्रा' कहानी में अपने बेटों के प्रति छटपटाती माँ का चित्र पाठकों के सामने प्रस्तुत किया गया है। जीवन की व्यर्थता और संबन्धों के तनाव को चित्रित प्रस्तुत कहानी में दोनों भाइयों के बीच का स्नेह संबन्ध टूटकर तनाव में परिवर्तित होने के कारण ममतामई माँ का दिल छटपटाता है। बचन के बडा बेटा लाली अपने छोटे भाई से अलग, सुख-सुविधा संपन्न जीवन जी रहा है तो छोटा बेटा बिन्नी अभावों से ग्रस्त जीवन यापन करता है। ममतामयी माँ इन दोनों पुत्रों के बीच तनावपूर्ण जिन्दगी जीने के लिए

बाध्य हो जाती है। कहानी में कहानीकार ने माँ के प्यार, ममता त्याग, व्यर्थताबोध तथा आन्तरिक द्वन्द्व के सूक्ष्म एवं स्पष्ट चित्रण प्रस्तुत किया है। डॉ.सुषमा अग्रवाल ने इस कहानी की विशिष्टता को व्यक्तकरते हुए लिखा है-"आर्द्रा में दो अलग-अलग रह रहे पुत्रों के बीच ममतालु माँ की पीड़ा प्रतिबिंबित हुई है। माँ दोनों के बीच विभाजित होकर जीती है। यही उसकी पीड़ा और दारुण यंत्रणा का कारण है।"[13]

'एक और ज़िन्दगी' कहानी की नायिका बीना अपने पति प्रकाश के बराबर पढ़ी लिखी है लेकिन उससे ज़्यादा कमाती है। वह खुद अपने को श्रेष्ठ समझती है। अहं भावना से युक्त बिना अपनी स्वतंत्रता पर ही ज़्यादा ज़ोर देती है। बच्चा प्रकाश के आगमन के बाद भी पति-पत्नी दोनों का मेल संभव न हुआ। "विवाह के कुछ महीने बाद पति-पत्नी अलग-अलग रहने लगे थे, विवाह के साथ जो सूत्र जुडना चाहिए था, वह जुड नहीं सका था। दोनों अलग-अलग काम करते थे। और अपना अपना स्वतंत्र ताना-बाना बुनकर जी रहे थे। लोकाचार के नाते साल में छः महीने में अभी एक बार मिल लिया करते थे। वह लोकाचार ही इस बच्चे को संसार में ले आया था। बीना समझती थी इस तरह पतिदेव ने जानबूझकर उसे फँसा दिया था। प्रकाश सोचता था अनजाने में ही उससे यह अपराध हो गया था।"[14] एक छोटी सी बात पर झगड़ा करके पति-पत्नी दोनों तलाक लेने तक पहुँचते हैं। अपने अहं की तुष्टि के लिए परेशान नारीपात्र अपने व्यक्तित्व के बारे में इतना सचेत है कि वह अपने ही मनोनीत स्वतंत्र अधिकारों के नाम पर लड़ती है। संबन्धों की मधुरता बनाए रखने की समझ उसमें नहीं है। महत्वाकांक्षी, स्वावलंबी, अहं से युक्त नारी की अतृप्ति और असंतुष्टि का व्यक्त चित्रण प्रस्तुत करके परित्यक्त नारी के अन्तर्द्वन्द्व और मानसिक पीडा का भी सटीक चित्रण पाठकों के सामने उभरकर आता है। तलाक के बाद बीना पति की स्मृतियों में जीती नहीं है। दूसरी शादी भी नहीं करती है। जीवन की हर परिस्थितियों को वह बड़ी हिम्मत के साथ झेलती है। फिर भी कहानी में हम देखते हैं कि बाद में जब पहाडी प्रदेश में प्रकाश की मुलाकात बीना और बेटा प्रकाश के साथ होता है तो 'पल भर के लिए उसकी आँख बीना से मिली। उसे लगा कि बीना का चेहरा पहले से कुछ सँवाला हो गया है और उसकी आँखों के नीचे स्याह दायरे उभर आए हैं। वह पहले से काफी दुबली भी लग रही थी।"[15]

संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ.श्रीमती मीना पिम्पलापूरे, मोहन राकेश का नारी संसार, पृ.11
2. मिसपाल, मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, पृ.15
3. वही पृ.24
4. वही पृ.25
5. सीमाएँ, मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, पृ.38
6. चंद्रकांता बंसल, सातवीं दशक की हिंदी कहानियों में मानवीय संबन्ध, पृ.109
7. सीमाएँ, मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, पृ.44
8. फौलाद का आकाश, मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, पृ.128
9. डॉ चमनलाल गुप्ता, मोहन राकेश के कथा साहित्य में मानवीय संबन्ध, पृ.24
10. हिंदी की नई कहानी का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, मिथिलेश रोहतगी, पृ.180
11. गुंझल-मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, पृ.419
12. गुंझल, मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, पृ.
13. कहानीकार मोहन राकेश पृ.54 डॉ.सुषमा अग्रवाल पंचशील प्रकाशन
14. एक और ज़िन्दगी : मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, पृ.
15. एक और ज़िन्दगी, मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, पृ.315

शोधछात्रा
अण्णामलै विश्वविद्यालय
चिदंबरम, तमिलनाडु

नयी कहानी आंदोलन की पृष्ठभूमि : एक अवलोकन

डॉ. उपेन्द्र कुमार

मूल आलेखः किसी भी साहित्य की विशिष्ट वस्तु और शिल्प के निर्माण में पृष्ठभूमि की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। साहित्य के समाजशास्त्री पृष्ठभूमि को केन्द्रीय महत्त्व का दर्जा देते हैं। किसी भी दौर की पृष्ठभूमि सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक परिस्थितियों से बनती है। हिन्दी कथा साहित्य के नयी कहानी आन्दोलन की भी विशिष्ट पृष्ठभूमि है जिसके प्रति नयी कहानी के सभी कहानीकार पर्याप्त सचेत हैं। 'नयी कहानी' नए भावबोध की कहानियाँ हैं। नयी कहानी का नयापन कोई नारा नहीं है बल्कि नया जीवनबोध और दृष्टि है। यह अपने आसपास की मिट्टी से उपजा बोध है. इसका कैनवास बहुत व्यापक है। इसलिए इसमें कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से व्यापक परिवर्तन दिखाई देता है। नयी कहानी की पृष्ठभूमि में उस समय देश में होने वाली राजनैतिक उथल-पुथल यानी जटिल और त्रासद राजनैतिक परिस्थितियाँ हैं। इस दशक की परिस्थितियों का सचित्र आकलन करते हुए हिंदी कथा साहित्य के प्रमुख रचनाकर राजेन्द्र यादव लिखते हैं, सन् 40 से 50 का युग भीषण राजनीतिक उथल-पुथल से भरा है। यही युद्ध के प्रांरभिक दिन और समाप्ति हैं, महँगाई, मुद्रास्फीति और चोर बाजारी से बाकायदा हमारा परिचय होता है, बयालीस की क्रांति और बंगाल का अकाल है, नाविक विद्रोह और आज़ाद हिन्द फौजों की हलचलें हैं, स्वतंत्रता प्राप्ति और सदी की सबसे भयानक दुर्घटना अर्थात् देश का विभाजन है... लाखों लोगों का इधर से उधर स्थानान्तरण है। हर शहर में शरणार्थियों के दल हैं, हत्या, लूट-पाट, आग, बलात्कार की द्रावक घटनाएँ हैं। जीवित रहने के संघर्ष, स्वार्थों की टकराहट, छूटे हुए घाव और अपने ही देशवासियों की दुर्दशाओं और क्षुद्रताओं के प्रमाण, राजनीतिक से लेकर जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं तक में दिखते हैं।" 'नयी कहानी' का जन्म इन्हीं घटनाओं-परिस्थितियों-परिवेश के दबाव में होता है। नयी कहानी की शुरूआत भारतीय संविधान की घोषणा अर्थात् 1950 के आसपास होती है और उसकी-अवधि सन् 1965 के आसपास तक चलती है। कथ्य एवं शिल्प को नवीनता एवं ताजगी प्रदान करते हुए नयी कहानी एक आन्दोलन के रूप में पहचान बनाती है। नयी कहानी आन्दोलन की पृष्ठभूमि के मुख्य चार महत्त्वपूर्ण आयाम हैं।

राजनीतिक पृष्ठभूमिः द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के लगभग दो वर्ष बाद भारत 1947 में औपनिवेशिक दासता से आज़ाद हो गया। लगभग ढ़ाई सौ वर्षों तक अंग्रेजों की गुलामी से दूर होने से भारतीय मानस में नवीन आशा का संचार हुआ। आजादी ने देश के लोगों में नई आशा और उत्साह का संचार किया। भारतवासियों में आजादी के साथ नई वैचारिक प्रेरणा का जन्म हुआ। कमलेश्वर के शब्दों में, स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही देश का वैचारिक पुनर्जन्म हुआ था। लेकिन इसके साथ ही आजादी की वास्तविकता पर प्रश्न भी लगाया गया। प्रसिद्ध इतिहासकार बिपन चन्द्र के अनुसार, साम्यवादी मानते हैं कि आजादी 1946-47 के उन जन-संघर्षो द्वारा हासिल की गई, जिसमें बहुत-से कम्युनिस्टों ने योगदान किया और अनेक मौकों पर जिसका नेतृत्व भी किया। लेकिन काँग्रेस के बुर्जुआ नेता इस क्रांतिकारी उभार से डर गये और उन्होंने साम्राज्यवादियों से समझौता कर सत्ता अपने हाथ में ले ली। राष्ट्र को इसकी कीमत विभाजन के रूप में चुकानी पड़ी। देश के समक्ष चिन्ता इस बात की थी कि दो शताब्दियों की दासता ने जिस देश की आर्थिक व्यवस्था को जर्जर एवं क्षीण बना दिया था, उस देश की जनता के आर्थिक जीवन स्तर को उँचा उठाएँ। सामाजिक विषमता को नष्ट कर वर्ग-विहीन समाज की सृष्टि करके समाजवाद की स्थापना की जाए। उद्योग-धंधों को

प्रोत्साहन मिले। अर्थतंत्र सुव्यवस्थित हो जाए आदि।

हालाँकि आजादी को लेकर इतने वैचारिक मतभेदों के बावजूद देश के नवनिर्माण और विकास के लक्ष्य पर आम सहमति का माहौल था। पंचवर्षीय योजनाओं, जमींदारी प्रथा, महाजनी सभ्यता का अंत, किसानों तथा श्रमिकों के हितों की रक्षा, विभिन्न उद्योगों की स्थापना, वर्ण विषमता को दूर करना, अस्पृश्यता को गैर-कानूनी रूप देना, आर्थिक संस्थानों का राष्ट्रीयकरण आदि पर आम सहमति बनी। लेकिन, आजादी का यह एक पहलू है। देश के विभाजन और साम्प्रदायिक दंगों के पश्चात् भीषण नर-संहार हुआ जिससे देश में शरणार्थियों की बाढ़-सी आ गयी। सरकार के सामने दंगे रोकने और विस्थापितों को स्थापित करने की विकट चुनौती थी। दरअसल जो वस्तुतः घटित हुआ, उसके संदर्भ में देखें, तो सबसे अवास्तविक आशा यह थी कि विभाजन शांतिपूर्ण होगा। न तो दंगो की कल्पना की गई थीं और न बड़ी संख्या में लोगों के स्थानान्तरण की योजना बनाई गई थी। माना यह जाता था कि जब पाकिस्तान की मांग मंजूर कर ली जाएगी, तो फिर लड़ने को रह क्या जाएगा? नेहरूको हमेशा की तरह भारतीय जनता की अच्छाई में विश्वास था, हालांकि अगस्त 1946 से ही दंगों की बाढ़ आई हुई थी फिर भी यह उम्मीद की जा रही थी कि एक बार विभाजन का ऑपरेशन हुआ कि सारा पागलपन हवा हो जाएगा। लेकिन शरीर इतना बीमार हो चुका था और ऑपरेशन के औजार भी कीटाणुग्रस्त थे, अतः ऑपरेशन बेहद अनगढ़ तरीके से हुआ। विभाजन के पहले स्थिति जितनी भंयकर थी विभाजन के बाद उससे ज्यादा भंयकर हो गई।" इस तरह इस घटना ने भारतीय राजनीति और संस्कृति के स्वरूप को जितना प्रभावित किया, उतना शायद ही किसी अन्य घटना ने किया हो। देश विभाजन स्थूल और भौतिक रूप से ही एक दुर्घटना नहीं था, यह एक मानवीय ट्रैजडी थी जिसने लाखों लोगों को भावात्मक, विचारात्मक, मनोवैज्ञानिक, मानसिक और आत्मिक स्तरों पर प्रभावित किया था। यह दुर्घटना केवल राजनीति या किसी एक वर्ग-विशेष से जुड़ी हुई नहीं थी, बल्कि इससे लाखों-करोड़ों लोगों की ज़िन्दगी- उनका वर्तमान और भविष्य, उनकी सभ्यता और संस्कृति, उनका आचरण और व्यवहार भी जुड़ा हुआ है। आजादी के तुरंत बाद महात्मा गाँधी की हत्या ऐतिहासिक घटना थी। इस घटना ने एक तरह से नए विकासमान मूल्यों की भी हत्या कर दी। गाँधीजी सत्य, अहिंसा, आत्मबल आदि मूल्यों से भारतीय जनता को रास्ता दिखाने का जो प्रयास कर रहे थे, उसका भविष्य अब खतरे में पड़ गया। गरीबों एवं अछूतों की सेवा करना ही उनके लिए सच्चा मानवीय मूल्य था। इनकी हत्या से भारतीय जनता में व्याकुलता तथा वेदना की लहर दौड़ गयी। जनता की उम्मीदों को जोर से धक्का लगा। प्रख्यात वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्सटीन ने गाँधी की हत्या के पश्चात् प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा, गांधी ने सिद्ध कर दिया कि प्रचलित राजनैतिक चालबाजियों और धोखा-धड़ियों के मक्कार भरे खेल के द्वारा ही नही, बल्कि जीवन के नैतिकतापूर्ण श्रेष्ठतर आचरण के प्रबल उदाहरण द्वारा भी मनुष्यों का एक बलशाली अनुगामी दल एकत्र किया जा सकता है। गाँधी जी की हत्या ने समाज के हर वर्ग को प्रभावित किया। विशेषकर लेखक, पत्रकार, साहित्यकारों ने इनकी हत्या पर काफी क्षोभ प्रकट किया। नई कहानी में इसका प्रभाव व्यापक स्तर पर देखा जा सकता है।

जब 1950 में नया संविधान लागू हुआ और भारत एक सार्वभौम गणतंत्र बन गया तब आजाद भारत की विदेश नीति का भी निर्धारण करना भी बहुत आसान हो गया। विश्वशांति और निःशस्त्रीकरण की दिशा में भारत ने प्रयत्न किया। भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ के हाथ मजबूत किए। इस प्रकार हमने विश्व में युद्ध के वातावरण को घटाने के लिए नैतिक वातावरण का प्रयत्न किया। भारत ने पंचशील नामक सिद्धान्तों को विश्व के सम्मुख रखा जिसके अन्तर्गत यह निश्चित किया गया कि एक देश दूसरे देश की स्वाधीनता का सम्मान करें। भारत ने

अंतर्राष्ट्रीय संबध के क्षेत्र में गुटनिरपेक्षता की नीति अपनाई और निर्गुट देशों के संगठन में अग्रणी भूमिका निभाई। देश का प्रथम आम चुनाव 1952 हुआ और जब काँग्रेस पार्टी को जीत मिली तथा जवाहरलाल नेहरू को प्रधानमंत्री बनाया गया। उन्होंने देश के विकास के लिए जो मॉडल अपनाया उसे विकास का नेहरूवादी मॉडल कहा जाता है। नेहरु के इस मॉडल से देश की जनता को बहुत उम्मीदें थीं, परन्तु जल्द ही विकास के इस मॉडल से मोहभंग हुआ। इस मोहभंग की स्थिति में जो साहित्य लिखा गया, उसे अधूरे सपने की झलक मिलती है। कमलेश्वर के अनुसार, राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार, स्वार्थपरता, भाई-भतीजावाद, जातिवाद, प्रातंवाद जैसे फोड़े राष्ट्र के शरीर में एक साथ फूट पड़े और चारों ओर मवाद, सड़ते मांस और गंदे खून की महक भर गयी। इसके पश्चात् 1962 के चीनी आक्रमण ने पं. जवाहर लाल नेहरू के पंचशील सिद्धांत को हवा में उड़ा दिया, जिससे नेहरू की प्रतिष्ठा को आघात लगा। देश अब गहरे आर्थिक राजनीतिक संकट से गुजरने लगा। आगे थोड़े अंतराल पर दो-दो बार पाकिस्तान के आक्रमण ने भारत की राजनीति पर प्रश्न चिह्न लगा दिया। सम्पूर्ण भारत निराशा एवं मोहभंग की स्थिति से गुजर रहा था। नई कहानी इसी हताशा, मोहभंग और देश की राजनीति के प्रति गहरी वितृष्णा का चित्रण करती है।

सामाजिक पृष्ठभूमिः आजादी की राजनैतिक घटना ने देश के सामाजिक जीवन में भी बदलाव किया। औद्योगीकरण और मशीनीकरण पर आधारित विकास ने सामाजिक जीवन में परिवर्तन की गति को तेज कर दिया। समाज में स्त्री-पुरुष को शिक्षा और नौकरी के लिए समान अवसर उपलब्ध हुए, घर की चारदीवारी में बन्द स्त्री कार्यालयों में काम करने के लिए स्वतंत्र हुई। सामाजिक जीवन में नयी हलचल और गति का समावेश हुआ। इस परिवर्तन का प्रभाव वैसे तो हर क्षेत्र और वर्ग पर पड़ा लेकिन भारतीय समाज का मध्यवर्ग इससे सीधे और गहराई तक प्रभावित हुआ। स्वतंत्रता की प्राप्ति से मिलने वाले नागरिक अधिकारों और कृषि संरचना से औधोगिक संरचना में स्थान्तरण के चलते पुराने रिश्ते-नाते टूटे-बिखरे, परिवार का परम्परागत ढाँचा जो प्रेमचन्द के समय से चरमरा रहा था, बुरी तरह बिखर गया। स्त्री-पुरुष की स्थिति और संबंधों में परिवर्तन आया। स्वंतत्रता ने युगों से पराधीन स्त्री को पुरुषों की ही भाँति कमाने-खाने की आजादी दी। समाज के विभिन्न वर्गो में नयी चेतना विकसित हुई, अब तक जो दलित शोषित था उसे सिर उठाकर चलने का वातावरण मिला और सरकार बनाने में भी उसको बराबर का मताधिकार मिला। अब तक जो नारी माता-पिता, सास-ससुर, पति-भाई इत्यादी के आश्रय और नियंत्रण में रहती थी उसे उन्मुक्तता एवं स्वतंत्रता का अनुभव हुआ। वह शिक्षा एवं राजनीति में स्वतंत्रत रूप से भाग लेने लगी। पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने का साहस किया। शिक्षा और नौकरियों में वह पुरुषों की प्रतिद्वंदी बन गई। स्त्री के प्रति परिवार में सम्मान में वृद्धि हुई क्यांकि वे आर्थिक रूप से मजबूत होने लगी थी। जो स्त्री स्वतंत्रता से पूर्ण पराश्रित और मजबूर थी, अब कार्यालय में जाकर नौकरी करने लगी। प्रेम, विवाह तथा यौन सम्बन्धों के सन्दर्भ में भी स्त्री का दृष्टिकोण बदला और यौन पवित्रता जैसे मूल्य उसके लिए केंद्रीय नहीं रहे। इन परिवर्तनों ने पति-पत्नी सम्बन्धों को भी बदला और पारिवारिक स्तर पर प्रेम विवाह आदि को स्वीकृति मिली। अब पति-पत्नी, पिता-पुत्र, माता-पुत्र आदि सभी सम्बंधों में एक स्पष्ट परिवर्तन देखने को मिला। इस प्रकार स्त्री की स्वतंत्रता ने संयुक्त परिवार की परम्परागत भारतीय मान्यता को तोड़ा और धीरे-धीरे पश्चिमी देशों की भांति भारत में उसके स्थान पर एकल परिवार की स्थापना की। नगरीकरण, औद्योगिकरण तथा आर्थिक दबावों ने भी परिवार-विघटन को जन्म दिया इससे मध्यवर्ग पर गहरा प्रभाव पड़ा। समाजशास्त्रियों और साहित्यकारों ने संयुक्त परिवार के विघटन को महत्वपूर्ण घटना के रूप में स्वीकार किया है। नगरीय और महानगरीय जीवन जीने वाले मध्यवर्गीय परिवारों और व्यक्तियों के लिए नियति बन गई। फेमली या

परिवार की सीमा आज पति- पत्नी और बच्चे ही हैं, उसमें भाई-बहन, भाभी-जीजा, बाबा-दादा इत्यादि रिश्ते नहीं आते। इस बात को समझने के लिए भारतीय व्यक्ति को जिन-जिन भीषण यातनाओं से गुजरना पड़ा है वे आज अविश्वसनीय लगती हैं, सयुंक्त परिवार की ऐतिहासिक आवश्यकता समाप्त हो चुकी है। 'नयी कहानी' के कहानीकार ने इन सारे परिवर्तित विघटित होते हुए संबंधों एवं मूल्यों को सूक्ष्म दृष्टि से देखा, समझा और अनुभव किया तथा बड़ी ईमानदारी के साथ अभिव्यक्त करने का रचनात्मक उपाय किया।

भारतीय राजनीति में महात्मा गाँधी और बाबा साहब आंबेडकर के प्रयास से अछूतोद्धार और शोषित-पीड़ित समाज की मुक्ति हेतु नारा व्यापक स्तर पर प्रसारित हुआ जिसे स्वतंत्रता के बाद सरकार ने एक महत्वपूर्ण समस्या के रूप में स्वीकार किया। दलितों-अछूतों को समाज में समान दर्जा दिये जाने के लिए अनेक कानून निर्मित किए गए। अस्पृश्यता को लेकर समाज में जो अन्याय और उत्पीड़न प्रचलित था, उससे निपटने के लिए 1955 में 'अस्पृश्यता अपराध अधिनियम' बनाया गया और साथ ही इन जातियों को शिक्षा से भी जोड़ने का प्रयास तेज हुआ। धीरे-धीरे भारतीय समाज में जातिगत वर्गों के स्थान पर आर्थिक स्तर पर वर्गों का निर्माण होने लगा जिसने भारतीय समाज के परम्परागत स्वरूप को एकदम बदल कर रख दिया। इसके साथ ही भारतीय नवयुवक वर्ग की मानसिकता में भी बदलाव आया। पहले की अपेक्षा आज का नवयुवक अधिक महत्वकांक्षी बना तथा देश विदेश की प्रत्येक गतिविधियों पर नजर रखने लग गया। शिक्षा प्राप्ति के लिए देश-विदेश तक जाना और पैसा तथा शोहरत कमाना उसका मुख्य उद्देश्य बन गया। परन्तु, अचानक नवयुवकों की स्थिति में इस बदलाव ने बरोजगारी को भी जन्म दिया जिससे उनमे कुंठा, अकेलापन तथा हताशा में वृद्धि हुई। नई कहानी नवयुवकों में व्याप्त, हताशा, कुंठा, क्षोभ एवं अकेलेपन को बड़े स्वाभविक ढंग से चित्रित करती है।

आर्थिक पृष्ठभूमि: ब्रिटिश शासन की दीर्घकालीन पराधीनता के फलस्वरूप भारत की अर्थव्यवस्था लगभग चरमरा-सी गयी थी। आजादी के बाद देश की आर्थिक स्थिति को सुधारने का उत्तरदायित्व, भारत के राष्ट्रीय नेताओं ने संभाला, देश की प्रगति तथा समृद्धि के लिए सुनियोजित प्रयास किए गए। कृषि के साथ-साथ उद्योग-धंधों के विकास की, स्वास्थ सेवा आादि के चौमुखी विकास की आवश्यकता थी। बेकारी की समस्या, भूमिहीनों को भूमि दिलाने और वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास की समस्याएँ थीं, जिनका समाधान हुए बिना कोई भी प्रयास सिद्ध नहीं हो सकता था। कारण था उस समय भारत के पास सीमित साधन। जिनका उसे सही ढंग से उपयोग करना था तभी आर्थिक दृष्टि से भारत की स्थिति सुधर सकती थी। इसी उद्देश्य को लेकर 1950 में योजना आयोग का गठन हुआ तथा पंचवर्षीय योजनाओं की शुरूआत हुई। पंचवर्षीय योजनाएँ देश की सुख, समृद्धि की दिशा में अग्रसर होता हुआ एक महत्वपूर्ण कदम मानी गयी। देश की आर्थिक प्रगति तथा विकास के लिए उद्योगों की स्थापना की गयी। चूँकि भारत कृषि प्रधान देश है। यहाँ कृषि को उद्योगों से जोड़कर देखा गया। देश को तकनीकी और आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनाने के प्रयास हुए। देश के अधिकांश श्रमिक, मजदूर आदि गाँवो से आते थे और वे अल्प शिक्षित तथा अशिक्षित होते थे इसलिए उत्पादन क्षमता को बढ़ाने के लिए यह अनिवार्य था कि श्रमिकों कों प्रशिक्षण दिया जाए। इसके लिए बड़े-बड़े शहरों में कुटीर उद्योग लगाये गये। ग्रामोद्योग के विकास पर भी ध्यान दिया गया। सरकारी औद्योगिक संस्थानों का सहयोग इन लघु कुटीर उद्योगों के विकास के लिए हुआ। भूमि सुधार के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कदम उठाये गए। चकबन्दी का कार्य भी तीव्रगति से हुआ। गाँवो में सहकारी खेती और सरकारी ग्राम-व्यवस्था भी पहुँची। भूमिहीनों की समस्याएँ भी जल्द सामने आने लगीं। गाँवों के प्रमुख धंधे कृषि की आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत यंत्रीकृत करने की योजना बनी। किन्तु

जिस व्यापक पैमाने पर यह क्रांति जिस रूप में आनी चाहिए उस दृष्टि से इसके विकास की गति धीमी रही। कस्बों तथा गावों के विकास खंड, लूट-खसोट, रिश्वत, भ्रष्टाचार आदि के केन्द्र बनने लगे। बेरोजगारी तथा गरीबी पर सरकार ने सैकडों योजनाएँ बनाईं, किन्तु उनका अनुकूल प्रभाव नहीं पड़ा। इस प्रकार आर्थिक विषमता और बेरोजगारी ने देश के सामाजिक-राजनीतिक जीवन को नए सिरे से पुनः प्रभावित करना शुरू कर दिया। इन सभी आर्थिक गतिविधियों से सम्बंधित मुद्दों को नयी कहानी के कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति प्रदान की है।

साहित्यिक पृष्ठभूमिः नयी कहानी आन्दोलन से पूर्व मनोविश्लेषणवाद को अपनी रचना का केंद्र बनाकर कहानी रचनेवाले कहानीकारों ने व्यक्ति के अंतर्जगत के यथार्थ के उद्घाटन में इतनी रुचि ली कि कहानी धीरे-धीरे सामाजिक चेतना से दूर चली गयी। दूसरी तरफ समाजवादी यथार्थवादी धारा के कहानीकारों ने सामाजिक यथार्थ को यांत्रिक तरीके से उद्घाटित करना शुरू किया और प्रगतिशीलता के बहाने कलात्मकता को उपेक्षित समझा। इन दोनों धाराओं के रचनाकारों ने जीवन के यथार्थ को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से रचनात्मक प्रयास किया जिसे यथार्थवाद की एक समग्र चेतना को जगाने से भटक गये। यही वह पृष्ठभूमि है जिसमें नयी कहानी को आंदोलन के माध्यम से फलने फूलने का अवसर मिला। इसीमें नयी कहानी की प्रवृतियाँ और विशेषताएँ एक नया आकार ग्रहण करती हैं; वस्तु और शिल्प के बीच संतुलन को बनाते हुए।

निष्कर्ष : स्पष्ट है कि नयी कहानी आन्दोलन की पृष्ठभूमि में कुछ ऐसी परिस्थितियाँ थीं जिससे नयी कहानी के कहानीकारों को अपनी रचनात्मक शक्ति को उभारने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इस दौर के कहानीकारों के समक्ष अनेक चुनौतियाँ भी थीं जिससे वे जूझ रहे थे। देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, साहित्यिक आदि कुछ ऐसी परिस्थितियाँ थीं जिससे बचकर रहना नये कहानीकारों के लिए असंभव था। यहीं कारण है कि इनकी कहानियाँ बदले हुए राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक आदि पृष्ठभूमि एवं परिदृश्य में नये दृष्टिकोण के साथ जीवन के यथार्थ को लेकर प्रस्तुत होती हैं।

सन्दर्भ सूची :

1. राजेन्द्र यादव, कहानी- स्वरूप और संवेदना, द्वितीय संस्करण, 1977, पृ. 39
2. कमलेश्वर, नयी कहानी की भूमिका, द्वितीय संस्करण, 1991, पृ. 09
3. मधुरेश, हिन्दी कहानी का विकास, तृतीय संस्करण, 2001, पृ. 58
4. विपन चंद्र, भारत का स्वंतत्रता संघर्ष, द्वितीय संशोधित संस्करण,1998, पृ. 387
5. वही, पृ. 398
6. नरेन्द्र मोहन, बीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध हिन्दी कहानी, प्रथम संस्करण, 1996, पृ. 09
7. लुई फिशर, गाँधी की कहानी, संस्करण, 2001, पृ. 19
8. मुक्तिबोध, भारतःइतिहास और संस्कृति, तृतीय संस्करण,1985, पृ. 173
9. कमलेश्वर, नयी कहानी की भूमिका, द्वितीय संस्करण, 1991, पृ. 14
10. मधुरेश, हिन्दी कहानी का विकास, तृतीय संस्करण, 2000, पृ. 59
11. कमलेश्वर, नयी कहानी की भूमिका, द्वितीय संस्करण, 1991, पृ.17
12. वही, पृ. 17,
13. राजेंद्र यादव, एक दुनिया : समानान्तर, प्रथम संस्करण,1993, पृ. 30

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
झारखंड केन्द्रीय विश्वविद्यालय, राँची
संपर्क: satyarthiu@gmail.com

सांस्कृतिक विस्थापन की त्रासदी : पाकिस्तान मेल उपन्यास के संदर्भ में

लक्ष्मिप्रिया बालकृष्णन

विस्थापन मानव जीवन की एक सार्वभौमिक विशेषता है। यह प्रक्रिया सदियों से विभिन्न कारणों से होती आ रही है। विस्थापन में, लोग अपने घर, परिवार और जन्मभूमि को छोड़कर दूसरी जगह की ओर पलायन करने को मजबूर होते हैं। इंसानों के लिए, उनका घर न केवल एक भौतिक सुविधा है, बल्कि उनकी सुरक्षा का प्रतीक है। विस्थापितों केलिए अपने ही जमीन से निकाल दिया जाना एक अलगाव भावना पैदा करता हैं। लोग अपनी जड़ों से कट जाने के कारण कष्टदायी पीड़ा का अनुभव करते हैं। विस्थापित लोगों की सामाजिक सदस्यता और राष्ट्रीयता पर हमेशा प्रश्नचिह्न लगाया जाता है। विस्थापन केवल लोगों के घर परिवारों और भूमि को लूटता नहीं है, बल्कि उन्हें आंतरिक रूप से भी चकनाचूर कर देता है। विस्थापन और परिणामी आघात लोगों को उनके इतिहास से वंचित करते हैं, और उनकी पहचान और आत्मविश्वास की भावना को नष्ट करते हैं। दूसरी मिट्टी में उखड़ने से उस भूमि का जीवन और अस्तित्व जो उस समय तक जीवित रहा, कहीं अचिह्नित हो जाता है। जबरन विस्थापन मानव जीवन को अधिक त्रासदीपूर्ण और दर्दनाक बना देता है। विभिन्न कारणों से लोग अपनी जमीन से पलायन कर दूसरी जगह जा रहे हैं। विकास परियोजनाओं, आर्थिक असमानता, राजनीतिक समस्याओं, युद्धों और संघर्षों जैसे कई कारणों से लोग विस्थापित होते हैं।भारत में पलायन का एक अन्य प्रमुख कारण भारत का विभाजन था। इससे कई लोगों को अपनी जमीन से भागना पड़ा। भारत का विभाजन और पाकिस्तान का उदय राजनीतिक निर्णयों का परिणाम था। लेकिन आज भी दोनों देशों के लोगों के मन में उसके कारण हुए जख्मों को नहीं भूले हैं। 'सड़क पर शरणार्थियों का एक सैलाब बहता हुआ दिखाई दे रहा था- अपने-अपने घरों से उजड़े और दूर दराज के गावों- शहरों से चले आ रहे हिन्दू -सिख शरणार्थी, जो अपने बच्चों और इक्का -दुक्का सामान के साथ भारत की तरफ बढ़े चले जा रहे थे - थके -टूटे , परेशान और लाचार। उसके फटे हुए कपड़े , रिश्ते घाव और सामान के नाम पर इक्का दुक्का गठरियाँ उनके पलायन का दर्द की कहानी सुना रहे थे। वे 'दंगों ' के शिकार नहीं थे - यह शब्द उनकी यातना को अभिव्यक्त करने के लिए कफी नहीं था। वे उस नरसंहार के शिकार थे जो दोनों समुदायों पर एक जनून की तरह हावी हो चुका था।"[1] इस त्रासदी के दर्द को दूर करने के लिए कोई भी राजनीतिक ताकत पर्याप्त नहीं है। विभाजन के बाद पलायन के कई सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक पहलू हैं। जिनमें से सबसे महत्वपूर्ण सांस्कृतिक विस्थापन है। सांस्कृतिक विस्थापन को समझने के लिए सबसे पहले संस्कृति के बारे में जानना चाहिए।

संस्कृति मानव जीवन को मूर्त रूप देती है और प्रभावित करती है। यह मानव जीवन की निर्धारक शक्तिहै। प्रत्येक व्यक्तिका व्यवहार, विचार, विश्वास, उसके जीवन मूल्य और दैनिक गतिविधियाँ संस्कृति से प्रभावित होती हैं। संपूर्ण मानव जीवन में संस्कृति की अपनी भूमिका और योगदान है। समाज के विकास के साथ-साथ संस्कृति का भी विकास जारी है। सामंतवाद, औद्योगिक क्रांति, वैज्ञानिक और तकनीकी विकास संस्कृति और समाज के विकास में कई चरण हैं। मनुष्य और संस्कृति परस्पर जुड़े हुए हैं। मानव विकास की प्रक्रिया में संस्कृति का अपना स्थान है। संस्कृति मानव जीवन द्वारा निर्मित और अनुरक्षित

वातावरण है। समय-समय पर इसमें उतार-चढ़ाव या परिवर्तन मानव जीवन को प्रभावित करते हैं।" संस्कृति परिष्कार , परिमार्जन और शोधन की ही एक क्रिया है जिसमें व्यक्ति और समाज एक व्यापक बौद्धिक चेतना तथा सौन्दर्य बोध से अपना सृजनात्मक व्यवहार निर्मित करता है। संस्कृति मनुष्य को मात्र उपयोगी क्रिया कलापों की सीमा का अतिक्रमण कराती है और चेतना को अध्यात्म, सौन्दर्य और सृजन के स्तर पर प्रतिष्ठित कर उसके जीवन में गुणों का समावेश करती है। संक्षेप में, संस्कृति एक अन्तर्निहित जीवन -गुणता है जो बहुत गहरे मानव स्वभाव में समाहित है।"[2] मानव जीवन का अतीत और भविष्य संस्कृति से जुड़ा है। जीवन का तरीका और मनुष्य का समग्र परिवर्तन संस्कृति पर निर्भर करता है। संस्कृति हमेशा बदलती रहती है, इसका निर्माण और पुनर्निर्माण निरंतर होता रहता है, यह हर समय हो रहा है। संस्कृति रातोंरात नहीं बनती, यह सदियों की मेहनत का नतीजा है। लेकिन संस्कृति शब्द सबसे जटिल शब्दों में से एक है, इसका उपयोग कभी-कभी सांस्कृतिक कार्यक्रमों के अर्थ में किया जाता है। संस्कृति केवल नाचना गाना कार्यक्रम मात्र नहीं है। बल्कि इसका संबंध जीवन शैली से है। साहित्य, भाषा, पोशाक, धर्म, शिक्षा और राजनीति जैसे सभी क्षेत्र संस्कृति से संबंधित हैं।

पश्चिमी और भारतीय विचारकों ने संस्कृति को अपने तरीके से परिभाषित किया है। इसमें मानव जीवन के सभी पहलू शामिल हैं। सांस्कृतिक अध्ययन एक ऐसा पाठ्यक्रम है जो बीसवीं शताब्दी के अंत में एक अकादमिक अध्ययन के रूप में उभरा। सांस्कृतिक अध्ययन ने संस्कृति को एक अलग नजरिए से देखना शुरू किया। सांस्कृतिक अध्ययन के केंद्र में संस्कृति को उसके पारंपरिक अर्थ से लोकप्रिय संस्कृति में बदलने का प्रयास है। संस्कृति के अध्ययन में कला के मानव निर्मित कार्य, रोजमर्रा की जिंदगी की घटनाएँ और विभिन्न विश्वास और प्रथाएं शामिल हैं। इसमें भोजन की आदतें, संगीत, नृत्य आदि जैसी सभी गतिविधियाँ शामिल हैं । सांस्कृतिक अध्ययन की शुरु आत पश्चिमी आलोचकों के विचार से है । ये विचारक संस्कृति के अध्ययन को जनता की सामान्य संस्कृति के रूप में देखते हैं। प्रसिद्ध विचारक एडवर्ड सईद ने इसे इस प्रकार परिभाषित किया है। सभी संस्कृतियाँ आपस में जुड़ी हुई हैं और कोई भी संस्कृति शुद्ध नहीं है। Edward said suggests, all culture are involved in one another ; none is single and pure , all are hybrid , heterogeneous , extraordinarily differentiated , and unmonolithic The idea of culture Terry eagleton Edward said - culture and imperialism (London 1993)" । रेमंड विलियम्स ने संस्कृति को मानव जीवन के सर्वांगीण विकास तक पहुँचने की कोशिश के रूप में देखता है । "In culture and society 1780-1950 , he offer four distinct meanings of culture ; as an individual habit of mind; as the state of intellectual development of a whole society ;as the arts ; and as the whole way of life of a group of people"[3] वह संस्कृति को एक विशिष्ट प्रतिमान के रूप में देखता है। इसी तरह कला और साहित्य के साथ-साथ संपूर्ण जीवन संस्कृति है। भारतीय विचारक संस्कृति को आध्यात्मिकता से जोड़ने का प्रयास करते हैं। संस्कृति को परिभाषित करने की प्रक्रिया आसान नहीं है, बल्कि जटिल है। मानव जीवन में संस्कृति के दो रूप होते हैं, एक जन्मजात होती है और दूसरी अर्जित की जाती है। जन्मजात संस्कृति हर इंसान के अंदर होती है। अर्जित संस्कृति वह है जो मनुष्य ने अपने अनुभवों से हासिल की है। हम अपने पूर्वजों द्वारा बनाई गई एक महान सांस्कृतिक परंपरा के वंशज हैं। इसका रूप समय-समय पर बदलता रहता है और इसमें नए तत्त्वों का समावेश

होता रहता है। संस्कृति में कई तत्त्व शामिल हैं जो मानव समाज के निर्माण और विकास को प्रेरित करते हैं। संस्कृति में मनुष्य के सभी व्यक्तिगत और सामाजिक व्यवहार शामिल हैं।

भारत की बहुलवादी संस्कृति को झटका देकर विभाजन की घोषणा की गई। विभाजन के बाद के विस्थापन के कारण, कई लोग अपने सांस्कृतिक परिवेश से अलग होने को मजबूर हैं। सांस्कृतिक विस्थापन के शिकार लोग अपनी संस्कृति और परंपराओं से पलायन करते हैं। सांस्कृतिक विस्थापन के कारण लोग अपनी जन्मभूमि से अलग हो जाते हैं। मानव जीवन उस मिट्टी पर निर्भर करता है जहाँ वे पैदा हुए हैं । उनके अस्तित्व और जीवन की गर्मी का आधार उनकी मिट्टी की छाती पर निर्भर करता है। उनकी जन्मभूमि उनके लिए केवल भौतिक सुख-सुविधा नहीं है, बल्कि उनकी माता है। वह नए सांस्कृतिक वातावरण में अपनी सांस्कृतिक भूमिका की तलाश जारी रखता है। विस्थापन उन्हें अपना शेष जीवन अपनी मातृभूमि से जुड़ी पुरानी यादों के साथ बिताने के लिए मजबूर करता है। वे हमेशा अपने वतन वापस जाना चाहते हैं और पहले की तरह रहना चाहते हैं। विस्थापन न केवल लोगों को उनके घरों, परिवारों और भूमि से वंचित करता है, बल्कि लोगों को आंतरिक रूप से नष्ट भी करता है। सांस्कृतिक विस्थापन के शिकार बनने वाले आम लोग विदेशी देश में कई त्रासदियों का सामना करना पड़ता है, जैसे कि उनकी भूमि से लगाव, अस्तित्व का संकट, दूसरे देश में द्वितीय श्रेणी की नागरिकता और असुरक्षित वातावरण। हिन्दी उपन्यास साहित्य में विभिन्न संदर्भों में सांस्कृतिक विस्थापन का उल्लेख और चर्चा की गई है। विभाजन पर आधारित सांस्कृतिक विस्थापन के विभिन्न पहलू हैं, यह अध्ययन पाकिस्तान मेल उपन्यास में चित्रित सांस्कृतिक विस्थापन पर आधारित है ।

विभाजन के अमानवीय कृत्यों ने दोनों समुदायों के बीच अविश्वास के बीज बोए हैं। सदियों से एक साथ रहने वाले लोगों में आस्था-विरोधी, सांप्रदायिक दंगे, घृणा, भारी रक्तपात, मानवीय संबंधों का टूटना और शरणार्थियों के रूप में महिलाओं के साथ क्रूर व्यवहार जैसी त्रासदियाँ हुई हैं।कई वर्षों तक देश की आजादी के लिए एक साथ लड़ने वाले लोगों के बीच खींची गई विभाजन रेखा ने उनके दिलों को भी विभाजित कर दिया।मानवीय मूल्यों को हवा में उड़ा दिया गया और लोगों ने एक-दूसरे को मार डाला। प्रमीला अग्रवाल के शब्दों में" ये मानवीय समस्यायें अनेक रूपों से सामने आयीं। सदियों से एक साथ, एक भूमि पर रहते आये हिन्दू-मुसलमानों के बीच धीरे धीरे पनपता घोर अविश्वास, विभाजन के पहले और बाद में हुए भीषण साम्प्रदायिक दंगे, निरपराध मनुष्यों का रक्तपात, आगजनी स्त्रियों पर बलात्कार की अमानवीय घटनाएँ, चिर परिचित भूमि को छोड़कर बिलकुल अनजानी जगह आश्रय की तलाश में जाते लोगों पर हुए अमानुषिक अत्याचार, अपनी भूमि से उजड़ने की वेदना , विस्थापित के रूप में नए देश में बसने की समस्या, परिवार से बिछुड़ी स्त्रियों के पुन : अपने परिवार में स्थान पाने की स्थिति -आदि।"[4] विभाजन के बाद सांप्रदायिक ताकतों द्वारा प्रचारित धार्मिक अंधेपन ने दोनों देशों में अल्पसंख्यकों के जीवन को असुरक्षित बना दिया और भारत में रहने वाले आम मुसलमानों की देशभक्ति पर संदेह की छाया डाली। अल्पसंख्यक की राष्ट्रीयता पर संदेह किया गया और अल्पसंख्यकों को अपनी देशभक्ति साबित करने के लिए हमेशा सबूत देने पड़ते थे। एक नए राष्ट्र के उदय ने लोगों को सुरक्षा की आशा दी, लेकिन इस सुरक्षा का आश्वासन केवल कागज़ों पर ही रह गया।घबराए हुए लोग मनो माजरा के लोगों ने महसूस किया कि वे सुरक्षित नहीं हैं। सांप्रदायिक दंगों के माहौल ने मनो मजारा को डरा दिया। लोगों का इससे कोई लेना-देना नहीं था। चारों ओर फैल रही चिंताजनक खबर ने ग्रामीणों को झकझोर कर रख दिया है।इस

बीच, लाशों से लदी गाड़ियाँ भी मनोमाजरा पहुँचती हैं जिससे भयानक वातावरण बनता है।" जब लोगों को पता चला कि गाडी लाशों का एक ढेर लेकर आई थी तो पूरे गाँव पर गहरा मातमी सन्नाटा छा गया। लोगों ने अपने घरों के दरवाजों को अच्छी तरह बंद कर लिया। सबके दिलों के प्रति शक-ओ- शुबह आन घुसा। सबको दोस्तों और साथियों की तलाश हो आई। उन्हें अब तारों को आच्छादित करते बादलों को लक्ष्य करने का भी ध्यान नहीं रहा , न ही हवा में बसी ठंडी नमी को महसूस कर पाने का अहसास। जब वे सुबह उठे और देखा कि बारिश हो रही थी तो उन्हें सबसे पहले गाडी का ही खयाल आया और उन जलती हुई लाशों का।"[5] इस असुरक्षित माहौल में लोग डर से कांप उठे। इस तरह के अमानवीय कृत्यों के कारण लोगों के बीच आपसी प्रेम और विश्वास टूटने लगा । विभाजन के तूफान के कारण लोग गहरे दर्द में भाग गए। उपन्यास में, विभाजन के बाद, मनो माजरा के मुस्लिम लोगों को सांस्कृतिक अलगाव के अधीन किया गया था । उन्हें उस सांस्कृतिक परिवेश से भागना पड़ा जहाँ वे धार्मिक भेदभाव के बिना सदियों से एक साथ रहते थे। उपन्यास में इमामबख्श और नूर के माध्यम से उनकी पहचान के संघर्ष और अपनी जमीन के लिए प्यार को ठीक ही दिखाया गया है। उठ और सामान बाँधना शुरू कर! हमें कल सवेरे ही जाना है " उसने तनिक नाटकीय ढ़ंग से बताया।

"जाना है? कहाँ?"

मुझे नहीं पता ... शायद पाकिस्तान।!"

लड़की झटके साथ उठकर बैठ गई , " मैं पाकिस्तान नहीं जाउँगी!" इमामबख्श ने ऐसे जताया जैसे सुना ही न हो ," सारे कपडे ट्रंक में डाल ले और बर्तन भाँडे बोरे में !भैंस के लिए भी कुछ ले लेना । हम भैंस को भी ले चलेंगे "! मैं पाकिस्तान नहीं जाउँगी"! लड़की ने उसकी बातों की परवाह किए बगैर उद्दंडता से कहा। तुम तो जाना नहीं चाहतीं न !पर वे तुम्हें निकाल बाहर कर रहे हैं। समझी !सारे मुस्लमान कैम्पों में जा रहे हैं ।" "कौन निकालेंगा हमें?यह हमारा गाँव है । सरकार और पुलिस क्या मर गई है?"[6] विभाजन के बाद आम मुसलमानों को अपनी जमीन छोड़कर पाकिस्तान जाने को मजबूर होना पड़ा। दिन-ब-दिन बेदखली की गंभीरता बढ़ती गई। पूरा गाँव विभाजन और पलायन के आतंक में डूबा हुआ था। धार्मिक भेदभाव के कारण लोगों को पलायन के साधनों का सहारा लेना पड़ा। अपनी जमीन से अलग होने में असहाय, इमामबख्श कहते हैं।" हमें पाकिस्तान से क्या लेना - देना! हमारा जनम यहाँ हुआ ! हमारे पितरों का जनम यहाँ हुआ! हम यहाँ तुम्हारे साथ भाई - भाई की तरह रहते रहे हैं ।" इमामबख्श अभिभूत-सा हो गया। मीत सिंह उसको अपनी बाँहों में भरकर सुबकने लगा। एकत्रित लोगों में से बहुत से धीमे धीमे रोने और नाक सुड़कने लगे।"[6]अपनी भूमि से अलग हो जाने की त्रासदीपन, अलगाव बोध ,सगे सम्बन्धियों से बिछुड़ने की दरदानात्मक स्थिति ये सभी इस वाक्यों से प्रकट हुआ है।

उपन्यास में ग्रामीणों के अपनी जमीन के प्रति प्रेम और उससे अलग होने की दर्दनाक स्थिति को दर्शाया गया है। विभाजन के बाद मनोजरा में जो समस्याएँ पैदा हुईं, वे आसानी से खत्म नहीं हुईं। बल्कि इन समस्याओं ने मनो माजरा के लोगों के रहन-सहन की स्थिति को बहुत प्रभावित किया है। विभाजन ने ग्रामीणों के भौतिक वातावरण को तोड़ने के अलावा उनके मनोवैज्ञानिक और पहचान की नींव पर भी सवाल उठाया। विभाजन के बाद, दोनों देशों में अल्पसंख्यक दूसरे दर्जे के नागरिक बन गए। विभाजन के कारण इन आम लोगों का अस्तित्व भी बंट गया।" उस रात मनो माजरा में शायद ही कोई सोया हो । लोग बातें करते, रोते और दोस्ती की कसमें खाते एक

- दूसरे को तसल्ली दे रहे थे कि सब कुछ जल्दी ही ठीक -ठाक हो जाएगा। नूरॉ के लौटने के पहले ही इमामबख्श मुसलामानों के घरों के चक्कर लगाकर लौट आया था। नूरॉ ने अभी तक कुछ भी बाँधा -बूँधा नहीं था। पर उसका मन इतना दुखी था कि उसे गुस्सा भी नहीं आ रहा था। पाकिस्तान जाने का खयाल जितना दुखदायी बड़ी उम्रवालों के लिए था , उतना ही जवानों के लिए भी होगा। अपनी सखी - सहेलियों से विदा लेने गई होगी बेचारी।"[7] वे अपनी ही भूमि से पलायन की आवश्यकता नहीं समझते थे, यह उनकी कल्पना से परे था। विभाजन से पहले उनके बीच धर्म की कोई दीवार नहीं थी। गावों की दैनिक दिनचर्या ट्रेन की सीटी से तय होती थी / मित सिंह एक साथ गुरु ग्रंथ साहिब और इमाम बख्श अजान का पाठ करते थे।यह सुरक्षित वातावरण नष्ट हो गया था। उन्हें सभी भावनात्मक संबंधों को अपनी जमीन पर छोड़कर भागना पड़ा।असुरक्षित माहौल के डर से लोग स्थानांतरण को मजबूरी मानते हैं।

विभाजन के बाद धर्म के आधार पर लोग अपना देश छोड़कर दूसरे देश चले गए। विस्थापन के दर्द को समझने के लिए शब्द काफी नहीं। आम लोगों को उनके देश की सीमाओं से बाहर धकेल दिया जाता है। लोग मानसिक और शारीरिक रूप से टूट जाते हैं और अलगाव की चपेट में आ जाते हैं। बहुत से विस्थापितों ने बहुत प्रत्याशा के साथ नए राष्ट्र में प्रवेश किया/लेकिन नए राष्ट्र में भी उनकी स्थिति अपरिवर्तित रही।/ विस्थापित लोग दूसरे देश में दर्दनाक सांस्कृतिक आतंक के शिकार हो जाते हैं। जीवन की उनकी एकमात्र आशा अपनी संस्कृति में लौटने की इच्छा है। भले ही विभाजन को एक राजनीतिक निर्णय माना जाता है और शरणार्थियों को उनके नए स्थान पर सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं, अपनी जमीन से अलग होने का दर्द उन्हें हमेशा सताएगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. एक जिन्दगी काफी नहीं, कुलदीप नैयर पृष्ठ संख्या 24
2 संस्कृति समस्या और संभावना, गोविन्द चातक पृष्ठ संख्या 219
3 The idea of culture Terry Eagleton page number 8
4 भारत विभाजन और हिंदी कथा साहित्य पृष्ठ संख्या 29- 30
5 पाकिस्तान मेल-खुशवंत सिंह पृष्ठ संख्या 136
6 पाकिस्तान मेल खुशवंत सिंह पृष्ठ संख्या 148
7 पाकिस्तान मेल पृष्ठ संख्या 152

सहायक ग्रन्थ सूची

1. पाकिस्तान मेल खुशवंत सिंह अनुवाद उषा महाजन, राजकमल प्रकाशन दूसरा संस्करण ; दूसरी आवृत्ति 2013
2. एक जिन्दगी काफी नहीं कुलदीप नैयर राजकमल प्रकाशन पहला संस्करण 2012
3. संस्कृति समस्या और संभावना गोविन्द चातक तक्ष शिला प्रकाशन , प्रथम संस्करण 1994
4. भारत विभाजन और हिंदी कथा साहित्य जयभारती प्रकाशन प्रथम संस्करण 1992
5 The idea of culture – Terry Eagleton Blackwell publishers , First published 2000

शोधछात्रा
श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, कालडी

संस्मरण

मेरे पूजनीय गुरुवर श्री के.एस.राघवन पिल्लै

के. राघवन नायर

हिंदी भाषा के एक महान अध्यापक श्री के.एस राघवन पिल्लै का देहांत हो गया है। उनका जीवन सरलता से अंकित है और सारी जिंदगी आप एक अटल गाँधियन, नैष्ठिक ब्रह्मचारी और हिंदी प्रचारक बने रहे। शिष्यगण को भरपूर प्यार भी दिया था। मैं यह अपना सौभाग्य समझता हूँ कि उनके विपुल शिष्य गण में मैं भी शामिल हूँ।

1955-58 में मैं कायमकुलम हाईस्कूल का विद्यार्थी था और उन दिनों में ही हमारा गहरा नाता जुड गया था। जब उनके गुज़र जाने की खबर मिली, तब से बहुत सी यादें- कुछ पुरानी, कुछ नई-उभरने लगीं, जिनके बारे में मैं लिखना चाहता हूँ।

1958 में हाईस्कूल छोडने के बाद मेरी पढ़ाई भिन्न-भिन्न जगहों में हुई थी और इसलिए मैं राघवन पिल्लै सर से संपर्क कर नहीं पाया था। मगर इस ना-संपर्क से कुछ फर्क नहीं हुआ क्योंकि 1975 में मेरा पता ढूँढ निकाल कर उन्होंने एक चिट्ठी भेजी थी और उसे पढ़कर मुझे बहुत खुशी हुई। शुरूआत में उन्होंने लिखा (हिंदी में) : "मेरे प्यारे शिष्य राघवन नायर को मेरा सस्नेह प्रणाम।" फिर लिखा (मलयालम में) : "माथे में चंदन का तिलक लगाकर मुस्कराता हुआ कक्षा में बैठनेवाले राघवन नायर को अब भी अपने मनोदर्पण में मैं देखता हूँ।" यह पढ़कर मेरी खुशी दुगुनी हो गई और यह सोचकर थोड़ा अचरज भी हुआ कि लगभग बीस साल बाद भी उन्हें मेरी सूरत याद आ रही है। बाद में वे जब जब तिरुवनंतपुरम में आते थे मैं जाकर उनसे मिलता था। एक बार वे मेरे घर आए और मेरे पूरे परिवार को एक साथ दैखकर उन्होंने अपनी खुशी प्रकट भी की थी।

कायमकुलम हाईस्कूल में पिछले दस साल से "पूर्व अध्यापक विद्यार्थी संगमम्" चल रहा है और मैं हमेशा जाया करता हूँ। एक बार भारी वर्षा हो रही थी और ऐसी बरसात में भी वहाँ पहुँचने के लिए किसी ने मुझे बधाई दी। मैं जवाब में बोला कि यह मेरे लिए तीर्थयात्रा के समान है। अक्सर हम तीर्थयात्रा पर इस विश्वास में जाते हैं कि वहाँ कोई ईश्वर उपस्थित हो। मगर यहाँ मेरे लिए यह केवल संकल्प नहीं; बल्कि हकीकत है क्योंकि राघवन पिल्लै सर मेरी नज़र में भगवान से कुछ कम नहीं है।

ऐसी कई यादें एक के बाद एक मेरे मन में आ रही हैं और इन्हें पूरा लिखने से यह लेख लंबा होने का डर है। बात यह है कि राघवन पिल्लै सर ने अपने दिल में एक खास जगह देकर मुझे अनुगृहीत किया है।

आज वे हमारे बीच नहीं रहे और मुझे पूरा विश्वास है कि वे सच में ही भगवान के प्यारे हो गए हैं। एक पुराने फिल्मी गीत का अनुकरण करके मैं ऐसा लिखना चाहता हूँ - "आज वे नहीं रहे, लेकिन जब होगा अँधियारा/ तारे में हम देखेंगे हँसता इक नया सितारा।"

जो अपना प्यारा हो गया है, उसे भगवान निश्चय ही एक सितारा बनायेंगे और यह सितारा हमेशा हमारी तरफ मुस्कराते हुए आकाश में उपस्थित है। यह चिंता मुझे तसल्ली दे रही है और उनके वियोग से पैदा होने वाला दुख एक हद तक सहने का बल भी देती है।

राघवन पिल्लै सर को नित्यशांती प्रदान करने की प्रार्थना की जरूरत नहीं, क्योंकि आप जैसे सरल और सात्विक इंसान को मरण के उपरांत दूसरी ज़िंदगी नहीं मिलेगी।

उस महान गुरुनाथ श्री के.एस.राघवन पिल्लै को मेरी हृदयपूर्ण श्रद्धांजली।

समकालीन सांस्कृतिक परिदृश्य में इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानी

डॉ बिनु डी

शोध सार : सारे संसार के मनुष्यों की एक सामान्य मानव संस्कृति हो सकती है।लेकिन प्रत्येक व्यक्ति अपनी रुचि और संस्कार के अनुसार संस्कृति का अर्थ समझ लेता है। उसी प्रकार एक जाति के संस्कार दूसरी जाति के संस्कार से बिल्कुल अलग हो सकता है।एक समाज एवं राष्ट्र की संस्कृति दूसरे से बिल्कुल अलग होती है।इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानी समकालीन संस्कृति की विभिन्न पहलुओं को साझा करने में सफल रही है।

बीज शब्दः संस्कृति,समकालीन,सांस्कृतिक पर्यावरण, भूमण्डलीकरण, बाज़ारवाद, उपभोक्तावाद

शोध विस्तार : मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति संस्कृति के माध्यम से करते हैं।संस्कृति में धर्म, कला, विज्ञान, विश्वास, रीति-रिवाज, रहन-सहन तथा मानव द्वारा निर्मित सभी वस्तुएँ सम्मिलित की जाती हैं। यही वस्तुएँ उसका सांस्कृतिक पर्यावरण कहलाती हैं। भौगोलिक पर्यावरण के विपरीत सांस्कृतिक पर्यावरण मानव निर्मित होता है। प्रत्येक समाज की अपनी सामूहिक जीवन प्रणाली होती है।

संस्कृति की कई परिभाषाएँ हैं। जो संस्कृति के भीतर छिपे अनेक तत्त्वों पर प्रकाश डालते हैंः-

"एक विशेष समाज के सदस्यों द्वारा ग्रहण किए गए एक जीवन शैली ही संस्कृति है।" मनुष्य ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए विभिन्न विधियों, उपकरणों, रीति-रिवाजों तथा प्रथाओं को जन्म दिया है। ये सब पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती रहती है। इन सबके योग को संस्कृति कहते है।

दूसरे शब्दों मे,' संस्कृति हमारे द्वारा सीखा गया वह व्यवहार है जो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होता रहता है।

एडवर्ड टायलर का कथन है कि संस्कृति वह जटिल समग्रता है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, आर्दश, कानून, प्रथा एवं अन्य किन्हीं भी आदतों एवं क्षमताओं का समावेश होता है जिन्हें मानव ने समाज के सदस्य होने के नाते प्राप्त किया है। व्यक्ति का समाज तथा संस्कृति के साथ समान रूप से संबंध है। व्यक्ति के व्यवहार के ये दोनों ही महत्वपूर्ण आधार हैं। इस रूप मे व्यक्ति, समाज एवं संस्कृति तीनों ही अन्योन्याश्रित हैं। व्यक्ति का समग्र विकास समाज तथा संस्कृति दोनों के प्रभाव से होता हैं। सामूहिक जीवन भी व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करता है तथा दूसरी तरफ संस्कृति के आर्दश नियम भी मानव-व्यवहार को दिशा प्रदान करते हैं।

इक्कीसवीं शताब्दी वैज्ञानिक प्रगति, तकनिकी विकास और उत्तर औद्योगीकरण का समय है। यह भूमंडलीकरण का उत्तर समय है। प्रौद्योगिकी और तकनीक की प्रगति, सूचना-क्रांति का तीव्र विस्फोट, कंप्यूटर और मोबाइल के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन ने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवेश को प्रभावित किया है। बाजारवाद और उपभोक्तावाद की संस्कृति का विकास हुआ। जिसने मानवीय मूल्यों से अलगाव की स्थिति उत्पन्न कर दी। मनुष्य की जगह वस्तु केंद्र में आ गया।

इक्कीसवीं सदी में यथार्थ यह है कि गाँव के गाँव खाली हो रहे हैं। किसान और कारीगर दिल्ली, मुंबई, कोलक्कता में जाकर दिहाड़ी मज़दूर बन गए हैं। इस क्रम में व्यैक्तिक और भावनात्मक लगाव से भी अलगाव होता जाता है। उससे सामुदायिकता और परिवार से संबंध भी लगातार छीजता चला जाता है। साथ ही व्यक्ति खुद अकेलेपन का शिकार होने लगता है। एक अलगाव, उदासीनता और तनाव व्यक्ति को

लगातार घेरे रहता है। वह यंत्रवत जीवन, भावशून्य जीवन जीने को विवश होता है।

इक्कीसवीं सदी में वर्चस्ववादी संस्कृति के प्रभाव के बढ़ने के साथ व्यक्ति लगातार अपनी सांस्कृतिक जड़ो से कटता जा रहा है। अपनी परंपराओं और सामजिक संबंधों से अलगाव होता जा रहा है। फलस्वरूप सांस्कृतिक विस्थापन की प्रक्रिया आरम्भ होने लगती है। मशीनीकरण और सुविधाओं के बाज़ार ने बहुत सारी वस्तुओं को ओझल कर किया। देसी आम, सिल लोढा, बरतन, लालटेन, ओखली आदि ऐसी ही वस्तुएँ हैं जो अब नज़र से ओझल कर दी गयी हैं। यह अन्धेरा बाज़ार की जगमगाहट ने पैदा किया है।

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानी संस्कृति के इस प्रकरण को सूक्ष्मता से चित्रित करती है। बीसवी सदी के अंत एवं इक्कीसवी सदी के आगमन पर हमें लग रहा था कि आने वाली सदी में बहुत सारे परिवर्तन होंगे। मीडिया ने भी अत्यधिक प्रचार-प्रसार किया। धूमिल जी के शब्दों में कहें तो- भीड़ बढती रही,/ चौराहे चौड़े होते रहे,/लोग अपने-अपने हिस्से का अनाज,/खाकर निरापद-भाव से,/बच्चे जनते रहे।

व्यक्ति जिस प्रकार के संस्कारों के अनुसार चेष्टाएँ, व्यवहार तथा कर्म करता है, उसी प्रकार एक राष्ट्र की मूलभूत संस्कृति गतिशील रहती है। देश और कालगत संस्कारों से प्रेरित मनुष्य के कर्म, व्यवहार तथा चेष्टाएँ संस्कृति के स्थूल शरीर का निर्माण करती है, और इसी कारण वैश्वीकरण के दौर में दूसरी संस्कृतियों की घुसपैठ होती रही। समाज का एक विद्रूप स्प भी साहित्य में उभरने लगा।

संस्कृति के संबंध में अनेक अनमोल कथन प्रचलित हैं-.

1. बिना संस्कृति और संस्कार,मानव जीवन अंधकार होता है: आर्यों के आगमन के पहले इस देश में एक समृद्ध द्रविड़ सभ्यता थी। सातवीं शताब्दी में पारसी लोग गुजरात के तट पर आए थे। इस्लाम के बार-बार आक्रमण के कारण वे फारस छोड़कर भारत आए थे। वे गुजरात के राजा से मिलने गए। राजा ने उन्हें स्वीकार करने से इनकार किया। पारसियों के नेता ने राजा से एक भरा हुआ दूध का कटोरा मंगाने का अनुरोध किया। उन्होंने दूध के कटोरे में एक चमच चीनी मिलाया और प्रदर्शित किया। जिस प्रकार दूध में चीनी मिलाने से दूध छलकता नहीं है उसी प्रकार पारसी जाति भी भारत की संस्कृति से घुल मिल जाएगी। आज भारतीय संस्कृति में अन्य संस्कृतियों का स्पष्ट प्रभाव मिलता है।

अमन चक्र की प्रसिद्घ कहानी है 'प्रेरणा'। प्रेरणा इसकी नायिका है।प्रेरणा अपने भाई-बहनों में सबसे बड़ी थी। वह बी.ए. करने के बाद कम्प्यूटर कोर्स कर रही थी। माता-पिता प्रेरणा की शादी के लिए चिंतित थे।उसकी शादी के लिए बहुत जगह बातचीत चलाई गयी थी, परन्तु कहीं भी बात नहीं बन पा रही थी। कारण वह लड़कों से औसतन लंबी होती थी। जबकि वह सुन्दर थी, पढ़ी-लिखी थी, व्यावहारिक थी।बहुत प्रयास के बाद एक दिन उसके माता-पिता को अरविंद के बारे में पता चला। उसकी लंबाई प्रेरणा के समतुल्य थी। वह दो साल पहले इंजीनियरिंग पास कर एक कम्पनी में कार्यरत था। उसे प्रेरणा पसंद थी। उसके माता-पिता को भी प्रेरणा का स्वभाव अच्छा लगा था। परन्तु अरविंद का निर्णय, उसकी छोटी बहन माया की पसंद पर निर्भर था। वे लड़की देखने की जगह श्री.लक्ष्मीनारायण मंदिर तय किये हैं। बृहस्पतिवार के कारण मंदिर में अन्य दिनों की अपेक्षा थोड़ी अधिक भीड़ थी। वहाँ देखने से यह प्रतीत होता था कि भीड़ में कई विचारधारा के लोग थे। कुछ लोग भक्तिभाव से प्रेरित होकर आये थे, तो कुछ लोग वास्तुकला की भव्यता को निहारने के लिए, तो कुछ लोग घूमने-फिरने तथा मौज-मस्ती के लिए आए थे। कुछ लड़के-लड़कियों को देख कर तो यही लगता था कि वे वहाँ मौज-मस्ती के लिए ही आए थे। कुछ लड़के वालों का

नखरा, लड़की वालों का भाग्य होता है।"[2] यहाँ इक्कीसवीं सदी में आये सांस्कृतिक बदलाव का चित्र मिलता है।

2. संस्कृति का सही मूल्यांकन अच्छी नारियों का उसपर प्रभाव है : पुष्पा सक्सेना की संस्कृति पर प्रश्न चिह्न लगानेवाली कहानी है- 'अनुत्तरित प्रश्न'। कहानी की प्रमुख पात्र है स्वाति। स्वाति जीजी को यूनीवर्सिटी में लेक्चररशिप मिल गई। शहर में जीजी की बहुत प्रतिष्ठा थी।वे साहित्यिक-सामाजिक गतिविधियों में सक्रिय थीं। जीजी हर जगह खुशी का माहौल बना देती थी। स्वाति दीदी ने जीवन भर महिलाओं को न्याय दिलाने के लिए संघर्ष किया और सबको समझाती थी कि पुरुषों को अपनी बैसाखी बनाना स्त्रियों की कमजोरी है। स्वाति दीदी की मृत्यु हुई। साहित्यिक संस्था की सचिव कल्पना ने भीगे कण्ठ से कहा- "स्वाति दीदी की अरथी को हम औरतें कंधा देगी।"[3] जीवन भर स्त्री-न्याय के लिए संघर्ष करने वाली स्वाति जीजी के लिए यह उनकी अंतिम श्रद्धांजलि थी।

दीपक श्रीवास्तव की कहानी है 'सत्ताईस साल की साँवली लड़की'। यह भारतीय समाज की अधिकांश लड़कियों की कहानी कहती है।कहानी सविता उर्फ रज्जो की है, जिसे शादी के लिए अब तक सोलह बार दिखाया जा चुका है, लेकिन हर बार असफलता ही हाथ लगी है।असफल होने के पीछे केवल लड़की का सांवला होना ही नहीं था बल्कि घर में पैसा न होना मुख्य कारण था। सबिता उर्फ रज्जो की विशेषता यह है कि वह विषम परिस्थितियों में और अधिक आत्मविश्वास से भरपूर होकर निखरती है। सत्रहवीं बार अस्वीकृत होने पर वह दुखी होकर घर नहीं बैठती अपितु पी एच. डी. करने के लिए प्रो. सेन से मिलने जाती है, यह भविष्य का रास्ता तलाशने का सूत्र है जो उसकी दृढ़ता को पोषित करता है। सत्ताईस साल की सांवली लड़की सविता उर्फ रज्जो नियुक्ति पत्र पाकर अपने को स्वतंत्र अनुभव कर रही है।

3.पीढ़ी के साथ आगे बढ़ने का मतलब यह नहीं है कि हम अपनी परंपरा को भूल जाएँ।

कर्ज लेकर भी आडम्बरपूर्ण जीवन बिताना आज की नयी संस्कृति है। जवान रातों-रात अमीर बनने के सपने देखते हैं। इसको उजागर करनेवाली हरभजन सिंह की प्रसिद्ध कहानी है 'मुखौटा'। कहानी का नायक सातवंत और उसका परिवार 1947 में पाकिस्तान से शरणार्थी बनकर भारत आये थे। सातवंत के घर में अपने पिता की याद में अखंड पाठ रखा है। उसमें मित्र अनिल को भी बुला गया है। बुआजी और अनिल के बीच के वार्तालाप के दौरान अनिल ने प्रश्न किया - घर को क्या हो गया, बुआ जी।

बुआजी ने कहाः सातवंत कर्ज में डूब गया है।अब सतवंत पर छह लाख का कर्ज है। मुझे तो यह छह लाख भी कम लगता है। मालूम हुआ है कि मेरे जम्मू वाले भाई से भी पाँच लाख वह उधार ले चुका है।और तो और, पड़ोसियों को भी नहीं छोड़ा। जब तक उनके ब्याज की रकम मिलती रही वे चुप रहे। ब्याज मिलना बंद हुआ तो सारी सच्चाई सामने आ गई। क्या जमाना आ गया है कि पत्नी अपने पति को भी नहीं बताती कि उसने कितना और किसे रुपया उधार दिया है। सोचती है कि पति से सच्चाई छुपा कर वह अमीर हो जाएगी। मगर वह नहीं जानती कि सच्चाई सामने आने पर पत्नी से विश्वास भी उठ सकता है। जवान बेटे के रातों-रात अमीर बनने के सपने ने हमें कहीं का नहीं छोड़ा। देखते ही देखते उसने दुकान खरीद ली, फैक्ट्री का मालिक बन बैठा, कार भी आ गई। हमने सोचा कि हमारा बेटा बहुत ही अच्छा है।

यह सब तो सच ही है, बुआ जी।' अनिल ने कहा।

"सच तो बेटे यह है कि अमीर वह होता है, जिसके विचार अमीरों जैसे हों, जो बुजुर्गों के अनुभव की कद्र करे। वक्त की मार को सहन करना तो बुजुर्ग ही सिखा सकते हैं। वह ही बता सकते हैं कि क्या ठीक है, क्या गलत। मगर आज जनरेशन गैप की बात कह कर

इस सच्चाई को अनदेखा कर दिया जाता है। मैं पूछती हूँ, यह जनरेशन गैप कब नहीं था।"[4]

4.अपनी आदत को बदलो भारतीय संस्कृति को नहीं: आज हम अपनी बात सभी लोग सुनाना चाहते हैं,लेकिन दूसरों की बात सुनने का मन नहीं है। ऐसी नयी संस्कृति से परिचित कराती है उमाकांत खुबालकर की कहानी ठतमाशा। नव साहित्य परिषद् के पुरस्कार अर्पण-समारोह चल रहा है।

"साहित्यिक लेखन एवं सम्मान का कार्यकम था परंतु प्रस्तुतीकरण के नाम से कोई गंभीरता नहीं दिखाई दे रही थी न कोई अनुशासित व्यवस्था। मंच पर अनुपस्थित गणमान्य अतिथियों के स्थान पर नए लोग आ गए थे फिर भी उनकी नामपट्टिकाएँ नहीं बदली गईं। सम्मानित रचनाकारों को बुलाने के पूर्व, न उनका परिचय कराया गया, न परंपरानुसार आदरपूर्वक लिवाने के लिए कोई गया था। सभागार में लोगों की आपसी बातचीत का शोर इतना बढ़ गया था कि कंपीयर तथा मंच के वक्ताओं का वक्तव्य सुनाई नहीं दे रहा था। लोग-बाग मोबाइल से मुँह सटाए धड़ल्ले से बातचीत में मशगूल थे। हॉल के भीतर निरंतर बढ़ते हुए कोलाहल से यह पता नहीं चल पा रहा था कि मंच पर किस रचनाकार को बुलाया जा रहा है। लगता है कि लोगबाग यह जानना भी नहीं चाहते थे।"[5]

5.जो संस्कृति महान होती है, वह दूसरों की संस्कृति को भय नहीं देती,बल्कि उसे साथ लेकर पवित्रता देती है। : प्रदीप सर्मा स्नेही की ठयास्मीन दीदी कहानी के प्रमुख पात्र हैं-यास्मीन और दीपू।यास्मीन दीदी हर साल रक्षाबंधन महोत्सव के समय दीपू को राखी भेजा करती थी। इस साल राखी नहीं मिली है इसलिए दीपू चिंतित है। माँ उसे दिलासा देती है-'आयेगा मेरे बच्चे जरूर आयेगा... मुस्लिम भाई यूँ तो यह त्यौहार नहीं मनाते। पर तुमने इतिहास में पढ़ा है कि रानी कर्मावती ने हुमायूँ को राखी भेज कर रक्षा की गुहार की थी और हुमायूँ ने राखी की लाज भी रखी थी। राखी धर्म की सीमाओं से परे है। धीरज रखो, यास्मीन का उत्तर जरूर आएगा, मेरा मन कहता है।"[6]

गंगा महान क्यों है दूसरों के प्रवाहों को स्वयं मिला लेने के कारण ही वह पवित्र रहती है।

6.वही संस्कृति उत्तम होती है जिसमें गरीब,कमज़ोर और लाचारों का शोषण नहीं होता है। : सरिता शर्मा की कहानी है-ठअदना-सा सिकंदर। कहानी की नायिका कुसुम की मृत्यु होती है। वह पैंतीस साल की विधवा और दस साल के बेटे की माँ है। दाम्पत्य की छोटी-सी अवधी में उसके पति की मृत्यु हुई थी।उसके पति मुन्ना को बुखार रहने लगा था। अस्पताल में भर्ती भी कराया। रिश्तेदारों ने खून भी दिया, सेवा भी की, पर दस दिन बाद मुन्ना चल बसा ।

कुसुम का तो वैसे ही बुरा हाल था। "अंतिम संस्कार निपटाया ही था कि दर्जनों लेनदारों की लाइन लग गयी। पैसे उधार देने वाले मुन्ना के हस्ताक्षर वाली कॉपी या कानूनी दस्तावेज लेकर खड़े रहते। लाखों की हेरा-फेरी थी। देने वाला कोई नहीं था। मुन्ना ने पैसे कहाँ लगाए, किसी को लौटाए या नहीं, इसकी जानकारी किसी को नहीं थी।"[7] वह अपनी छोटी-सी उम्र में आदर्श भारतीय बेटी,पत्नी और माँ की संक्षिप्त भूमिका निभा कर दुनिया से विदा हो गयी।

7.संस्कृति इंसान को सभ्य बनाती है और जीवन को सुखी बनाती है : इक्कीसवीं सदी की युवतियाँ, आत्म-विश्वास से भरपूर हैं । सब कुछ कितना आसान है इस नई पीढ़ी के लिए। अपने जीवन के छोटे-बड़े निर्णय वे खुद लेंगे। अपनी गलतियाँ वे खुद करेंगे और उन्हें भोगेंगे भी बिना शिकायत के।

'वुमेन इज नॉट बार्न बट मेड' सिमोन द बोउआ का बार-बार उद्धृत यह वाक्य औरत जाति के प्रति समाज के दृष्टिकोण को परिभाषित करता है। सामाजिक सोच औरत को कैदी बना देती है। जीवनभर अस्तित्व की तलाश। बेटी, बहन, पत्नी, माँ...इन सब भूमिकाओं

से हटकर क्या है वह? समाज ने पुरुष की भूमिका तय की है पर उन्हें सोचने की, चुनने की आजादी नहीं दी है।

शोभा नारायण की ठफिलहाल कहानी इक्कीसवीं सदी की आत्म-निर्भर नारी की कहानी है। कहानी की नायिका वैदेही लक्चरर है।रमन गुप्ता उसके पति हैं,प्रतीक और प्रिया उनके बेटे-बेटी हैं ।वह पच्चीस साल के बाद रवि से मिलने जा रही है।रवि और वैदेही कॉलेज में एक साथ पढ़े थे।पच्चीस साल पहले परिवार की राय में रवि चेरियान वैदेही के लिए योग्य नहीं था। वह मछली खाने वाला मलयाळी है।रस्टोरेंट में दोनों की मुलाकात हुई। बातें करते-करते वह रवि के साथ उसके कमरे में गयी। पुरुष और स्त्री प्यार को कैसे अलग-अलग ढंग से देखते हैं! वह रवि नहीं, जिसे वह पच्चीस साल पहले जानती थी। वैदेही को लगा, जीवनभर वह इस्तेमाल होती रही, इससे-उससे। उसे पाठ पढ़ाए जाते रहे और वह पढ़ती रही। अच्छी बेटी, अच्छी औरत, अच्छी पत्नी, अच्छी माँ! वैदेही ने रवि के बढ़ते हुए हाथों को धकेल कर पीछे कर दिया।"[8]

8.भारतीय संस्कृति सदियों से कहती आ रही है कि मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु संपत्ति है।

चंदन पांडेय युवा कथाकार हैं। उनकी नजर इक्कीसवीं सदी के समाज पर हैं, जो अप्रत्याशित रूप से बदल रहा है। हमारे नये मध्यवर्ग की मानसिकता को चंदन पाण्डेय ने अपनी कहानी 'सुनो' में भलीभांति रेखांकित किया है। मानस के पिता उसे रिश्वत देकर आई.ए.एस. परीक्षा में पास कराना चाहते हैं । इस निश्चय में जितने रुपये खर्च होंगे, उन्हें वे शैलजा के पिता यानी शर्माजी से दिलवाना चाहते हैं। शर्माजी अपनी बेटी शैलजा से उसकी शादी करना चाहता है। इस डील में मानस की पूरी स्वीकृति है।लेकिन उसकी प्रेमिका है नेहा। मानस अब जीवन में कोई जोखिम मोल लेना नहीं चाहता है। इसलिए मानस के मन में किसी प्रकार की दुविधा नहीं है, उसे दोनों चाहिए। यानी नेहा और आयोग की नौकरी, बाकी सब व्यर्थ हैं। पढ़ाई में कमजोर मानस जीवन-जगत की चालाकियों में उतना ही होशियार है।

इक्कीसवीं सदी का पहला दशक इसलिए याद किया जायेगा कि अब आधुनिक होने से अधिक आधुनिक दिखने की इच्छाएँ प्रबल हो गयी हैं, अब जिसपर अधिक धन है वह धन के पीछे ज्यादा पागलपन के साथ दौड़ रहा है।जीवन के प्रति यह नया दृष्टिकोण हमें विश्व अर्थव्यवस्था ने दिया है। इस नयी अर्थव्यवस्था ने पूरे समाज को बाजार के बीच लाकर खड़ा कर दिया है, इसलिए सबकी मजबूरी है कि बाजार की अनिवार्यता को स्वीकार करें। बाजारवाद के विरोध में हिंदी की युवा पीढ़ी ने खूब कहानियाँ लिखी हैं, उनमें से एक महत्त्वपूर्ण कहानी है पंकज मित्र की 'क्विज मास्टर'।

9.अपनी संस्कृति से जितना भागोगे उतना ही खुद को संकट में पाओगे।

आधुनिक परिवार में विवाहित नारी पुरुष तो हैं, लेकिन पति-पत्नी नहीं लेकिन उनकी संतानें हैं। लेकिन बेटे-बेटियाँ नहीं दिखाई देते हैं। सहोदर हैं लेकिन भाई नहीं है। जब पति और पत्नी के सम्बन्ध से हार्दिकता छूट गई है ।संतानों को न तो पिता से प्यार है, न माता से ममता। पारिवारिक वातावरण में जहाँ पैसे, आमदनी और ओहदे की बातें चलती हैं, वहाँ बेटे-बेटी भी माँ-बाप के पास पैसे का खाता खोलता है, प्यार का नहीं। माँ-बाप इस कारण उनके लिए वन्दनीय नहीं, वे अपने को उनके आज्ञाकारी भी नहीं मानते। आज पत्नी स्वतन्त्र है, पति स्वतन्त्र है दासता की जंजीर टूट गई है, पुत्री भी स्वतन्त्र है। लेकिन यह स्वतन्त्रता ने भावनाओं के स्निग्ध कोमल सम्बन्धों को भी तोड़ दिया है। इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानियों में ऐसे भावनाशून्य रिश्तों का सजीव चित्रण मिलता है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि जिस प्रकार भूख को मिटाने के लिए भोजन की आवश्यकता होती है।उसी प्रकार परिवार,समाज और राष्ट्र के विकास के लिए संस्कृति की आवश्यकता होती है।संस्कृति सदियों तक इसलिए जीवित रहती है, क्योंकि इनमें परिवर्तनशीलता का गुण होता है। जब दुनिया में अगर कोई संस्कारों की परिभाषा लिखी जाएगी तो मेरे देश की तस्वीर ही इनके नज़र में आएगी।

संदर्भ

1. समकालीन कहानी और 21 वां सदी की चुनौतियाँ पृ.64
2. इन्द्प्रस्थ भारती पृ.39
3. वही, पृ.48
4. वही, पृ.59
5. वही, पृ.65
6. वही, पृ.74
7. वही, पृ.78
8. वही, पृ.133

संदर्भ ग्रंथ

1. इक्कीसवीं सदी का पहला दशक और हिंदी कहानी
2. समकालीन कहानी और 21 वां सदी की चुनौतियाँ
3. इन्द्प्रस्थ भारती
4. कविता कोश
5. कहानी कोश
7. साहित्य अमृत

सहायक आचार्य
सरकारी आर्टस एण्ड सयन्स कॉलेज
कोषि़क्कोड

कविता

शब्दों की अशुद्धि में..

आतिरा धनिष्ठा

शब्दों की अशुद्धि में जब आई अधिकता,
अर्थ की दृष्टि में जब आई अज्ञानता,

पूरा व्यर्थ जब पहेली बन कर है घूमता,
अज्ञानी हो जब दिखाने लगी कठोरता।

संपादक दिखाता है वहाँ अपनी आर्द्रता
वह अपने ज्ञान रूपी कुंजी-पटल में है ढूँढता

व्याकरण के पीछे भागता है वह इकलौता।
वह राह दिखाता है अर्थ को ताकि 'व्यर्थ'
व्यर्थ ही रह जाए,
और विराजमान हो जाए अर्थ सिंहासन पर।

एम.ए. प्रथम वर्ष
हिंदी विभाग
महात्मा गाँधी कॉलेज
तिरुवनंतपुरम

दलित आंदोलन और दलित साहित्य

डॉ सिन्धु ए

दलित किसी जाति से जुड़े शब्द नहीं बल्कि अवबोध या पहचान है। दिलित का अर्थ है आर्थिक सामाजिक और धार्मिक तौर पर दबाए जाने वाले शोषित समुदाय। ब्राह्मणों की जाति विरुद्ध आंदोलनों की शुरुआत 19वीं सदी के प्रथम दशक में हुई। भक्ति आंदोलन और नवजागरण संस्थाओं ने ब्राह्मणवादी सिद्धांतों पर विमर्शनात्मक दृष्टि डाली। ज्योतिबा फुले, रामस्वामी, श्री नारायण गुरु और अय्यंकाली ने आर्थिक और सामाजिक जीवन पर ज़ोर देनेवाली अब्राह्मणिक दलित ज्ञान व्यवस्था को रूपायित करने की कोशिश की। इन कोशिशों को सैद्धांतिक रूप देने का प्रथम प्रयास अंबेडकर ने किया।

दलित साहित्य दलित आंदोलन का औजार है। यह भोगे हुए यथार्थ को लिखने के साथ-साथ जाति विहीन समाज के निर्माण का कार्य भी करता है। जाति विहीन समाज से तात्पर्य जहाँ जाति का कोई भेदभाव ना हो। समाज में जब कोई परिवर्तन या आंदोलन चलता है तब साहित्य उनसे अछूता नहीं रह सकता। साहित्य नए समाज के निर्माताओं में एक है। जिस प्रकार दलित आंदोलन या दलित संस्थाएं दलित मुक्ति के लिए कार्यरत हैं उसी प्रकार दलित साहित्य भी इसी प्रक्रिया से जुड़े हुए हैं। "शिक्षा का प्रचार, आंदोलन का दबाव और प्राप्त परिस्थितियों के विरुद्ध संघर्ष के तहत युवकों ने विषम समाज रचना के प्रति होनेवाले 'सन्ताप और क्रोध' अपने कलम से अभिव्यक्त किया। इनको दलित साहित्य के नाम से पहचाना जाने लगे।"[1] भारत के दबाए गए लोगों की करुणादायक जिंदगी और पीड़ाएँ, उनके हक के लिए चलाए गए आंदोलन आदि से प्रेरित होकर दलित साहित्य का जन्म हुआ। सामाजिक परिवर्तन ही दलित साहित्य का सौंदर्य है। कल तक दबाए रखें शब्दों की, विचारों की, विकारों की, अभिलाषाओं की और दुखों की अभिव्यक्ति दलित साहित्य में हुई। नवीन भाषा में दलित साहित्य निकले। कभी-कभी प्रतिशोध की भाषा साहित्य का सौंदर्य बन गए। जनार्दन वाडरे लिखते है कि "दलित साहित्य बदला लेने के लिए आह्वान करनेवाला साहित्य नहीं ना ही विद्वेष पैदा करने वाला साहित्य है। दलित साहित्य मानव समाज की मुक्ति का आह्वान देता है।यह ऐतिहासिक माँग है। इसीलिए ही यह अलग स्वत्व और संज्ञा को स्वीकारा।"[2] साहित्य शोषण के आधार पर बने सभी समाजिक श्रेणी को तोड़कर रखने का प्रयास करते हैं। सामाजिक बदलाव के लिए लिखे जाने वाले साहित्य होने के कारण प्रस्तावित साहित्यानुभूति या साहित्य सौंदर्य से भिन्न है दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी है 'सलाम'। इसमें पढ़े लिखे हरीश सलाम प्रदा को तोड़ता है। दलितों को दबाकर रखने वाले रीति-रिवाजों को पढ़े-लिखे हरीश के माध्यम से वाल्मीकी तुडवाते हैं। यहां कहानी दलित आंदोलन के औजार बनती नजर आती है। हरीश कहानी में बताते है आप चाहे जो समझो मैं इस रिवाज को आत्मविश्वास तोड़ने की साजिश के रूप मानता हूँ। यह सलाम की रस्म बंद होनी चाहिए।"[3] दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र निषेध का सौंदर्यशास्त्र है निषेध का स्वर सलाम में मुखरित है। दलितों को शादी के उपरांत बड़े-बड़े घरानों में नेक के लिए जाना पड़ता था। घरवाले उन्हें कुछ कपड़े और पैसे देते हैं। आर्थिक संघर्ष न होने पर भी उन्हें जाति के मुताबिक यह रिवाज़ निभाना पड़ता था। दलितों को निचले जात का बोध दिलानेवाले इस रस्म को हरीश तोड़ता है। परंपरा के रूप में स्वीकारे जानेवाले इस अनाचार को बरकरार रखने की पूरी कोशिश सवर्णों समाज के लोग करते है। कहानी में बल्लू रांघड सलाम को मानने केलिए हरीश को धमकाता है। लेकिन पढ़ा-लिखा हरीश मानने के लिए तैयार नहीं होता और न पढ़ी लिखी दुल्हन मानती है।

किसी भी समाज का स्वत्व निर्माण तभी संभव होता है जब देश काल द्वारा निर्णीत अनुभवों को अन्यों की नजरों से न होकर स्वयं पहचाने लगते हैं। यह पहचान ही एक समाज को स्वत्व प्रदान करता है।पढे लिखे समाज ही इसे पहचान पाते है। इसीलिए दलित समाज का शिक्षित होना अनिवार्य है। पढ लिखे हरीश के पिता कहते है कि "हम सलाम पर अपने बेटे को नहीं भेजेंगे।"[4] हरीश का ससुर पगड़ी उतारकर बल्लू रांघड से गिड़गिड़ा कर कहता है कि "चौधरी जी जो सजा भुगतना है भुगत लूँगा। बेटी को विदा हो जाणे दो जमाई पढ़ा-लिखा लड़का है गांव देहात की रीति न जाणे है।"[5] यही तो फर्क है पढ़े लिखे और अनपढ़ व्यक्ति में। जुम्मन सलाम को रीति रिवाज मानता है। लेकिन पढ़े-लिखे लोग इसे आत्मसम्मान को तोड़ने की साजिश के रूप में पहचान लेते हैं। शिक्षा उन्हें सोचने और विचार ने और गुलामी से मुक्ति हासिल करने का औजार है। यह बात सवर्ण समाज पहचान भी लेते हैं। इसीलिए ही बल्लू रांघड कहता है कि "तभी तो कहो जात (बच्चों) को स्कूल ना भेजा करो। स्कूल जाकर कौन सा उन्हें बलिस्टर बनाना है। उपर से इनके दिमाग चढ जांगे। यो न घर के रहेंगे ना घाट के।"[6]

शिक्षा को दलित अपनी मुक्ति के मार्ग के रूप में स्वीकारा। पढ़ लिख कर अपने समाज के पिछड़ेपन से मुक्तिका प्रयास वे करते रहे। वे अपने हक के प्रति सचेत हो गए। संवैधानिक तौर पर भारत के सभी लोगों को समान अधिकार है। लेकिन भारत की सामाजिक संरचना जाति के मुताबिक स्थापित हुई है।सदियों से निचले स्तर के लोगों के रूप में दलितों को देखा गया। समाज में सवर्णों का अधिकार कायम थे। दलित समाज सभी अधिकारों से वंचित रहे। सवर्ण समाज दलितों को बराबरी के हकदार के रूप में स्वीकारने के लिए तैयार नहीं रहे है। बल्लू राघंड जुम्मन से कहता है कि "इन शहरवालों को कह देणा-कव्वा कभी भी हंस न बन सके।"[7] पढ़ लिख कर भी कालेपन को कभी न मिटा पाएंगे और नही समान अधिकार हासिल होंगे। यही बात बल्लू रांघड कहता है। संविधान में सभी समान होने पर भी ब्राह्मण वादी समाज दलितों को अस्पृश्य के रूप में ही देखते हैं। 'नो बार' कहानी में इसका खुलासा हमें दिखाई देता है। अपने को प्रोग्रेसिव कहनेवाले अनीता के पिता अपनी बेटी की शादी के विज्ञापन में नो बार लिखने पर भी राजेश जो दलित हैं उनसे अपनी बेटी की शादी कराने के लिए तैयार नही हो पाते। शादी की बात आगे चलते वक्त जब पिता को शक होता है कि राजेश दलित है तो वे अपनी बेटी से कहते है कि "वह सब तो ठीक है कि हम जाति को नही मानते ओर हम ने मैट्रीमेणियल में नो बार छपवाया था। लेकिन, फिर भी कुछ चीजें तो देखनी ही होती है। आखिर नो बार का यह मतलब तो नही कि किसी चमार- चूहडे के साथ..।"[8] राजेश के पिता को अनिता के पिता से अपनी जाति न बताने का डर देख सकते है। लेकिन राजेश इस डर को अपने पिता के अनपढ हेने के कारण स्वीकारते है।वह कहता है "दरसल जाति पाँति और भेदभाव का यह रोग अनपढ लोगों में ही है,पढा लिखा लोग कहाँ जाति को मानता है।"[9] इस बात को हम नकार नहीं सकते कि भारतीय सामाजिक संरचना का आधार जाती हैं इस संरचना को तोड़े बिना जाति भेद को मिटाना मुमकिन नहीं है।

हमारे समाज में शोषण का सबसे बड़ा आधार जाती रही। इसीलिए अंबेडकर ने स्वतंत्रता और समानता पर स्थित व्यक्ति संकल्पना को समाज के सम्मुख रखा। पश्चिमी लिबरल मूल्यों को अपनाते हुए उन्होंने स्वीकारा कि "जाति व्यवस्था को तोड़े बिना छुआछूत का उन्मूलन संभव नहीं। छुआछूत और जाति दोनों एक साथ जुड़े हुए हैं। इसको अलग नहीं कर सकते। दोनों को एक साथ ही मिटा पाएँगे।"[10] उन्होंने समझा कि सामाजिक व्यवस्था का समूल परिवर्तन से ही दलित का उद्धार संभव है। दलित साहित्य समाज के समूल परिवर्तन के लिए कटिबद्ध है।"दलित लेखक सामाजिक सरोकारों के दायित्व से लिखता है। उसके लेखन से कार्यकर्ताओं का जोश, निष्ठा अभिव्यक्त होती है। दलित लेखक आंदोलन में सक्रिय कार्यकर्ता कलाकार है। वह अपने साहित्य को आंदोलन मानता

है। उसके सरोकार समग्र ब्रोकन मेन से है।"[11] वाल्मीकि अपनी कहानी सलाम में हरीश का दोस्त कमल उपाध्याय, जो जाति के मुताबिक सवर्ण है, दलित होने की व्यथा से परिचित कराते हैं। गाँव में शादी पर चलने से दलित समझकर उसे चाय के दुकानदार चाय पिलाते नहीं है ।दूकान में उसे बहुत कष्टदायक अनुभवों से गुजरना पड़ता है। एक बार के लिए ही सही दलित होना कितना कठिन अनुभव है यह कमल पहचान लेता है। वह हमेशा हरीश से कहता था कि उसमें जाति को लेकर हीन भावना है। उससे बाहर निकलना है। लेकिन जब उसे चाय वाले चमार समझकर चाय देने से इनकार करता है और गाली देता है तो कमल के लिए यह सब असह्य हो जाता है। कहानी बताती है- "इस वक्त कमल के सामने हरीश का एक-एक शब्द सच बनकर खड़ा था।"[12] भारत की सामाजिक संरचना में सांस्कृतिक पूंजी किस प्रकार काम करती हैं इसकी ओर कहानी इशारा करती हैं। इसी संस्कृतिक पूंजी के बल पर अनीता के पिता यह सोचते हैं कि विज्ञापन में नो बार जोड़ने पर भी कोई भी दलित युवक इस विज्ञापन को जवाब देंगे। भारत के परिवार संरचना का आधार वंश व जाती हैं। चमार चमार से, भंगी भंगी से, शर्मा शर्मा से जुड़कर ही परिवार बनते हैं। समाज की एक सशक्त इकाई है परिवार।जाति के आधार पर स्थायित पारिवारिक संरचना को तोड़ने पर ही समाज में उपस्थित जाति भेद का उन्मूलन संभव हो पाएगा। प्रोग्रेसिव समाज ब्राह्मण लोगों के बीच के नो बार तक को ही स्वीकार कर पा रहे हैं। जाति भेद को भारत के संविधान ने आपराध के रूप में स्वीकारा है। मूर्त रूप में समाज में एक हद तक जाति भेद दिखाई भी नहीं दे रहा है। लेकिन मानसिक प्रक्रिया में यह विद्यमान है। सलाम में भी कमल की माँ पन्द्रह वर्ष के उपरांत भी कमल के दोस्त हरीश को अपने घर की थाली में खाना नहीं दे पा रही हैं। वह हमेशा कहती हैं कि "बेटे इनके संस्कार गलत है ये छोटे लोग हैं। इनके साथ बैठने से बुरे विचार मन में पैदा होते हैं।"[13] दोनें कहानियों में मानसिक स्तर पर विद्यमान जाति भेद का खुलासा हुआ है। कहानियाँ समाज में उपस्थित जाति भेद की सच्चाई से हमें वाकिफ कराती हैं।

भारतीय समाज में जाति भेद आज भी एक सच्चाई है। इससे मुक्त एक समाज का निर्माण दलित साहित्य का लक्ष्य है। दलित लेखन प्रक्रिया स्वाधीनता हासिल करने की एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है। यह मानवाधिकार को बचाने का आंदोलन है। दलितों को दबाके रखने वाले इतिहास, परंपरा, रीति रिवाज को तोड़ने का प्रयास दलित साहित्य के माध्यम से हो रहे हैं। नए समाज की संरचना ही दलित साहित्य का लक्ष्य है।

1. शरण कुमार लिंबाले,दलित साहित्य वेदना और विद्रोह,पृ.सं-42
2. Arjun Dangle,Poisoned Bread, 312
3. ओमप्रकाश वाल्मीकि, सलाम,17
4. सलाम,16
5. सलाम,17
6. सलाम,18
7. सलाम,18
8. जयप्रकाश कर्दम, नो बार,59
9. नो बार, 56
10. B.R Ambedkar, Collected works,vol-5,111
11. दलित साहित्य वेदना और विद्रोह,43
12. सलाम,13
13. सलाम,15

संदर्भ ग्रन्थ सूचि

1. शरण कुमार लिंबाले,2014,दलित साहित्य वेदना और विद्रोह,वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली।
2. ओमप्रकाश वाल्मीकि,2014,सलाम,राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली।
3. जयप्रकाश कर्दम, 2005, तलाश,विक्रम प्रकाशन, नयी दिल्ली।
4. Arjun Dangle,(ed)1994,Poisoned Bread,Orient logman,Bombay.
5. B.R Ambedkar, 1996-2002,Collected works, Ambedkar Foundation,New Delhi.

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
पय्यन्नूर कॉलेज, कण्णूर

हिंदी कथा साहित्य में परिवारः परिभाषाएँ एवं भेद

डॉ स्मिता चाक्को

सार :- मानव सभ्यता का इतिहास सतत अग्रसर होनेवाली एक गतिशील प्रतिक्रिया है। मानव सभ्यता सतत परिवर्तनशील एवं विकासमान होती है। प्रकृति से संस्कृति की ओर जाना, मानव सभ्यता की विशेषता रही हैं। संस्कृति एवं सभ्यता होती है। संस्कृति और सभ्यता के निर्माण में अनेक सामाजिक इकाइयाँ कार्यरत होती है। इन इकाइयों में परिवार एक महत्वपूर्ण इकाई है। यह कहा जा सकता है कि 'परिवार' सभ्यता और संस्कृति की नींव है। उसी से समाज व्यवस्था बनती है और अनेकानेक सामाजिक संस्थाएँ निर्माण हौती हैं। परिवार एक ऐसी इकाई है जिसमें परस्पर आश्रित मानव समूह एकसाथ रहकर स्वयं के लिए जीते हुए भी अन्यों के जीने में योगदान देते हैं।

परिवार की परिभाषाएँ

जुकरमैन के अनुसार- "एक परिवार समूह पुरुष स्वामी उसकी स्त्री या स्त्रियों और उनके बच्चों से मिलकर बनता है और कभी इसमें एक या अधिक अविवाहित पुरुष भी सम्मिलित रहते हैं।[1]

मैकाईवर तथा पेज लिखते हैं- "परिवार पर्याप्त निश्चित यौन सेबंध द्वारा परिभाषित एक ऐसा समूह है जो बच्चे के जनन और लालन-पालन को व्यवस्था करता है। इसमें समपार्श्विक अथवा सहायक संबंधी भी हो सकते है, लेकिन इसका निर्माण पति-पत्नी के एक साथ रहते और बच्चों के साथ मिलकर एक विशिष्ट इकाई बनाने से होता है।[2]

ऑगबर्न तथा निमफॉक ने बताया है- ''संतान सहित अथवा संतान सहित पति-पत्नी की समिति को या संतान सहित स्त्री या संतान सहित पुरुष की थोड़ी बहुत को परिवार कहते हैं''।[3]

बर्गीस और लॉक का कथन है- ''एक परिवार उन व्यक्तियों का समूह है, जो विवाह, अथवा गोद लेने के संबन्धों में एक-दूसरे से बंधे रहते है, जो एक गृहस्थी का निर्माण करते हैं, जो पति-पत्नि, माता-पिता, पुत्र-स्त्री और भाई-बहन की निजी सामाजिक भूमिका में एक-दूसरे के साथ अंतः संचार रहते हैं, और जौ एक सामान्य संस्कृति का निर्माण करते हैं तथा उसे बनाए रखते हैं।''[4]

उपर्युक्त परिभाषाओं सें स्पष्ट है कि परिवार की परिभाषा के संबंध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। पारिवारिक समूह में पति-पत्नी और उनके बच्चों के अतिरिक्त कुछ अन्य भी सदस्य हो सकते हैं जो निकट के रक्त संबंधी जैसे माता, पिता, भाई, बहन आदि और गोद लिए होते हैं।

परिवार के रूपगत भेद : मानव-समाज के विकास के साथ-साथ परिवारों का रूप भी परिवर्तित हुआ है। क्योंकि प्रत्येक समाज के आचार-विचारों में अंतर होता है तथा स्थानीय, भौगोलिक, संस्कृतिक व्यवस्था भी परिवार के स्वरूप में विभिन्नता लाती है।

परिवार के रूप को स्पष्ट करते हुए डॉ. मंजु शर्मा ने कहा है- ''विश्व के विभिन्न भागों में भौगोलिक सांस्कृतिक और सामाजिक विविधता के कारण परिवार के रूपों में भी अंतर पाया जाता है''।[5]

विवाह के आधार पर परिवार के भेद

विवाह संबंधी परिवार के केंद्र में पति-पत्नि और अविवाहित बच्चे होते हैं, उनके भेद निम्न हैं-

1. एक विवाह परिवार - जब एक पुरुष एक समय में केवल एक ही पत्नी रखता है, तब उसे एक विवाह परिवार कहते हैं। वर्तमान औद्योगिक समाजों में इसी प्रकार के परिवारों को आदर्श माना जाता है। भारत में अधिकतर हिंदू परिवार और कुछ जनजातियों के ऐसे ही परिवारों में इसी प्रकार के परिवारों को आदर्श माना जाता है। भारत में अधिकतर हिंदू परिवार और कुछ जनजातियों में ऐसे ही परिवार पाए जाते हैं।

2. बहु-विवाही परिवार - एक समय में एक ही पुरुष की एक से अधिक पत्नियाँ होना या एक स्त्री के बहुत से पति होना ही इस समाज की विशेषता है। इस आधार पर इनको दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. बहु-पत्नी विवाही परिवार
2. बहु-पति विवाही परिवार

सदस्यों की संख्या के आधार पर भेद

1. संयुक्त परिवार- संयुक्त परिवार का अर्थ स्पष्ट करते हुए डॉ. एस.सी. दुबे ने लिखा है कि "यदि कई मूल परिवार एक ही साथ रहते हों, और उनमें निकट का नाता हो, एक ही स्थान पर भोजन करते हों और एक ही आर्थिक इकाई के रूप में कार्य करते हो तो उन्हें संयुक्त परिवार हे जाएगा।"[6] संयुक्त परिवार में कई पीढ़ियों के सदस्य कर्तव्य पारायणता के आधार पर एक-दूसरे के साथ बंधे रहते हैं।

2. केंद्रीय परिवार- यह परिवार का छोटा और मूल रूप है। इसमें केवल पति-पत्नी और अविवाहित बच्चे होते हैं। ऐसे परिवार आधुनिक समाज में विशेषतः नगरीय समाज में बहुलता से पाए जाते हैं।

अधिकार या सत्ता के आधार पर भेद-सत्ता के आधार के निम्न दो रूप पाए जाते हैं-

1. पितृसत्तात्मक परिवार- इस परिवार में प्रत्येक महत्वपूर्ण निर्णय लेने का अधिकार पुरुष को प्राप्त होता है। घर के सदस्यों के प्रति दायित्व निर्वाह तथा नियंत्रण का भार भी उसी पर होता है। भारत में अधिकतर परिवार पितृ सत्तात्मक ही हैं।

2. मातृ-सत्तात्मक परिवार- ऐसे परिवारों में माँ का स्थान सर्वोच्च होता है। बच्चों पर या सम्पत्ति पर माता के रक्त संबंधियों का अधिकार होता है। वही उनके पालन-पोषण की व्यवस्था करते हैं। उत्तराधिकारि भाई अथवा बहन का लड़का होता हैं।

वंश के आधार पर भेद-इलियट और मैरिल ने वंश के आधार पर परिवाल के निम्न भेद माने है-

1. पितृवंशीय परिवार- आधुनिक सभ्य समाज में परिवार पिता के वंश के अनुसार चलते हैं। पुत्र पिता के वंशनाम को ही प्राप्त करता है।

2. मातृवंशीय परिवार- माता का वंशनाम बच्चों को प्राप्त होना ही इन परिवारों की विशेषता है। पिता वंश का महत्व नहीं होता। मालबार के नायर जानजाती में ऐसे ही परिवार होते हैं।

3.उभयवाही परिवार- ऐसे परिवारों में वंशानुक्रम को महत्व दिया जाता है। वंश का निर्धारण निकट संबंधियों के आधार पर होता है।

4. दिवनामी परिवार- माता-पिता दोनों के वंशनाम के आधार पर बालक नाम प्राप्त करता है। दोनों का ही वंशनाम साथ-साथ चलता है"।[7]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्राचीन-कालीन समाज का स्वरूप ही सर्वोपरी उच्चतम था। संयुक्त परिवारों की तो बात ही क्या एकल परिवार भी प्रेम की गंभीरता, सहिष्णुता और सहयोग के अभाव में विच्छिन्न होते नज़र आ रहे हैं। तत्कालीन समाज के धैर्य, क्षमाशीलता, सत्यता, पवित्रता, धार्मिकता, संयम और निष्कपटता आदि गुण आज भी हमारे जीवन के मार्गदर्शक और प्रेरणा स्त्रोत बन सकते हैं।

संदर्भ

1. द सोशल लाइफ ऑफ मन्कीज, एच. जुरमेन, पृ. 225
2. सोसायटी, मैकाइवर तथा पेज, पृ. 238
3. ए हैण्टबुक आफ सोशियालोजी, डव्लयु.एफ.ऑगबर्न और एम.एफ, निमफॉक, पृ. 459
4. द फैमली फ्राम इन्स्टीट्यूशन ऑफ कम्पेनियनशिप, एच.जे. लाड, पृ. 81
5. रेसेज एण्ड कल्चर ऑफ इण्डिया, डॉ. मजूमदार, पृ.1
6. साठोत्तरी महिला कहानीकार, डॉ. मंजु शर्मा, पृ.47
7. द सेशल लाइफ ऑफ मन्कीज, एच. जुरमेन, पृ.225

अतिथि प्राध्यापक, हिंदी विभाग
काथोलिकेट कॉलेज, पत्तनमतिट्टा

व्यवस्था के हथकंडे और व्यक्ति की नियति : जितेंद्र भाटिया की कहानियों के संदर्भ में

डॉ सौम्या. एस

"वे ही दिन थे, जब मैंने अपने नौसिखियेपन से उबर कर धीरे-धीरे जानना शुरू किया था कि इनसान की ज़िंदा रहने की लड़ाई कितनी मुश्किल और भयावह होती है। उन मशीनों और कल-पुर्जों के बीच रह कर पहली बार मुझे पता चला था कि एक बड़ी सख्त विभाजन रेखा है, जो हमें लगातार छोटा बने रहने पर मजबूर करती है, छोटे ढंग से सोचना सिखाती है। यह भी जाना था मैंने कि इस विभाजन रेखा के इस ओर खड़े हम सिर्फ बने रहने के लिए लड़ सकते हैं, इस रेखा को तोड़ नहीं सकते।"[1] मानवीय अस्तित्व की इस भयावह त्रासदी के जाँच-पड़ताल करने पर पाता है कि इस त्रासदी के मूल में कोई तंत्र या व्यवस्था है जो अस्तित्व की यातना का महत्वपूर्ण पहलू बनकर उभर कर आती है। आज की जटिल समाज व्यवस्था में व्यक्ति अपने आपको चारों तरफ से घिरा हुआ पाता है और असहाय अनुभव करता है। जितेन्द्र भाटिया की कई कहानियाँ व्यवस्था के विभिन्न हथकंडों से त्रस्त व्यक्ति का आत्म-संघर्ष है। 'शहादतनामा', 'अनुष्ठान', 'सिद्धार्थ का लौटना' जैसी चर्चित कहानियों के माध्यम से व्यक्ति को कभी भ्रमित, कभी दमित, कभी विवश और कभी निराश बनानेवाली तंत्र की अमानवीयता पूरी भयावहता और सहजता से कहानीकार ने चित्रित किया है। कल-कारख़ानों के बीच बिताए गए अपने औद्योगिक जीवन के दौरान व्यवस्था द्वारा कुचली गई ज़िंदगियों से उनकी मुलाकात हुई होगी और शायद इसी कारण से उनके पात्र एवं परिवेश पूरी सूक्ष्मता और जीवंतता के साथ कहानियों में मौजूद होते हैं।

व्यवस्था की घेराबंदी में बने रहने के लिए मजबूर व्यक्तिके अंत:संघर्ष कभी उसे अवसरवादी बनाता है, कभी विद्रोही, कभी वह समझौते की राह अपनाता है तो कभी पलायन की। इस सारी व्यवस्था में व्यक्ति स्वयं को अकेला, बेबस और अजनबी महसूस करता है। जितेन्द्र भाटिया की कहानी चक्रव्यूह का पात्र सोचता है- "पर कभी-कभी सभी कुछ बहुत असुरक्षित और डरावना-सा लगने लगता है। लगता है कि आप अकेले कुछ भी नहीं हैं, किसी भी वक्त आपको दूध की मक्खी की तरह निकालकर बाहर फेंक दिया जाएगा।"[2] इस व्यवस्था में पड़कर ज़िंदा रहने के लिए आदमी लड़ते-लड़ते एक ऐसे मकाम पर पहुँच जाता है जहाँ वह मानवीयता के ही गुण खोने लगता है। आत्मग्लानि का अनुभव करते हुए भी व्यवस्था के अनुसार चलने को विवश हो जाता है। व्यवस्था में अपनी तुच्छ स्थिति को बनाए रखने के लिए अपने मन के सारे आक्रोश, द्वंद्व यहाँ तक कि अपनी आवाज़ तक को दबोचकर बाहरी और भीतरी दुनिया से अपने आपको असंपृक्त करता है। अपने परिवेश में घटित हर अन्याय और अत्याचार के प्रति एक निस्संग नीरवता उसके अंदर रह जाती है। क्योंकि किसी भी प्रतिवाद का मतलब है अपनी तुच्छ सुविधाओं से हाथ धो बैठना। समझौते की नीति को अपनाने को विवश मातहत कर्मचारियों की हालत गुलामों की तरह है जिन्हें उनके मालिक पैरों तले दबाकर रखते हैं। 'चक्रव्यूह' कहानी का पात्र दफ्तर की अपनी कठपुतली जैसी ज़िंदगी पर सोचता है- "मैंने ज़रा भी चूं-चपड़ की तो नौकरी से अलग कर दिया जाऊँगा। इस ख्याल से मेरे भीतर का सारा आक्रोश पिघलकर एक दब्बू किस्म के डर में तब्दील होने लगा। मुझ जैसे आदमियों के साथ अक्सर यही होता है।"[3]

अर्थ और अधिकार केंद्रित व्यवस्था में मानवीय संबंधों की परिभाषा कब की बदल चुकी है। औद्योगीकरण और आधुनिकीकरण से होकर भूमंडलीकरण तक के दौर में मनुष्य का परिवेश और

सहजीवियों के साथ संबंध के समीकरण बनते-बिगड़ते रहे हैं। एक न मालूम सी भय की वजह से या पूरे तंत्र की यांत्रिकता में रगड़ते रहने से संवेदनाहीन निर्लिप्तता व्यक्ति की सच्चाई बन गई है। अनुष्ठान कहानी में कांट्रैक्ट मज़दूर पांडू का कंपनी में दुर्घटनाग्रस्त होकर मरने पर फोरमैन शिंगरे की प्रतिक्रिया इस ठंडेपन को व्यक्त करता है-"फोरमैन शिंगरे को ऐसे हादसों का काफी अनुभव था। इससे पहले भी वह दो-तीन बार दुर्घटना के बाद की औपचारिकताओं को अकेले संभाल चुका था। शायद इसीलिए उसकी मुद्राओं में हड़बड़ाहट और बदहवासी की जगह सिर्फ एक ठंडी संजीदगी थी।"[4] पांडू की मृत्यु पर उसके झोंपड़पट्टी के लोग भी उसके मौत के बारे में जानने की कोशिश नहीं करते। "शायद वह सब गैर ज़रूरी था और उन सबने मौत के झटके को उसके अधिक विध्वंसकारी आर्थिक पक्ष तक ही समझना सीखा था।"[5] इस कहानी का 'मैं' पांडू की आर्थिक सहायता न करने पर आत्मग्लानी का अनुभव करते हुए भी यह सोचकर आश्वस्त भी होता है कि कम से कम उसके पैसे डूबने से बच गए। स्पष्ट है, बाहरी तौर पर तमाम औपचारिकताओं को निभाने पर भी अंदर ही अंदर आदमी कितना कमीना होता है। पांडू की माँ के साथ प्रोडक्शन मैनेजर का व्यवहार भी इसी यांत्रिकता से परिचालित है। "कुछ ठिठक कर उन्होंने मराठी और अंग्रेज़ी की नपी-तुली खिचड़ी में पांडू की माँ से संवेदना के दो शब्द कहे थे, फिर रूमाल निकालकर उससे अपने चश्मे का शीशा पोंछने लगे थे।.....फिर जेब में से पर्स निकालते हुए उन्होंने सौ का एक नोट खींच कर पांडू की माँ की ओर बढ़ा दिया था।"[6] स्वार्थ और हृदय-शून्य व्यवहार के सिवा, मनुष्यों के बीच और कोई दूसरा संबंध बाकी नहीं बचा है।

सत्ता और संपत्ति के केंद्रीकरण से उत्पन्न वर्ग विभाजन विभिन्न नामों का मुखौटा पहनकर जीवन के समस्त क्षेत्रों में व्याप्त है जिससे व्यक्त होता है कि साम्राज्यवादी रुझानों से व्यक्ति आज भी मुक्त नहीं है। व्यवस्था में कायम इस वर्ग-विभाजन में शक्तिसंपन्न वर्ग दुर्बल को चूसते हैं और इसी कोशिश में लगे रहते हैं कि दुर्बल अपनी हैसियत से कभी बाहर न आए। उनकी हैसियत निर्धारित करनेवाले यही विशिष्ट वर्ग है। उनकी लड़ाई इस विभाजन रेखा को तोड़ नहीं पाती। वे केवल व्यवस्था में अपने पूर्वनिर्धारित स्थान को बनाए रख सकते हैं। बड़े-बड़े मशीनों के बीच काम करनेवाले मज़दूर व्यवस्था के लिए संवेदनशील मनुष्य नहीं मात्र यंत्र है जिसके श्रम से पूँजीवादी व्यवस्था अधिक से अधिक मुनाफा कमा सकती है। इन मशीनों के बीच किसी का दुर्घटनाग्रस्त होना, मरना व्यवस्था के लिए कोई मायने नहीं रखता। 'अनुष्ठान' में कंपनी का सबसे समर्थ और उत्साही मज़दूर पांडू अस्थाई होने पर भी पूरी सोपरी की मशीनों का काम अकेले संभालता है। सारे ऑपरेटर और फोरमैन ख़तरनाक कामों को उसके हवाले करके आराम करते थे। पांडू का व्यक्तित्त्व एक आदर्श मज़दूर के तयशुदा सांचे में ढल चुका था और अपनी व्यावहारिक मजबूरी के तहत उसमें प्रतिवाद की शक्ति नहीं थी। ऑपरेटर और फोरमैन द्वारा ख़तरनाक तरीके से मशीन चलाने से पांडू की मौत हो जाती है। पर इस हत्याकांड से अपने को सुरक्षित रखने के लिए पांडू की ईमानदारी और कर्मठता को सूली पर चढ़ाया जाता है। "ठेका मज़दूरों को इस बात की मनाही है कि वे सोपरी के किसी वाल्व को हाथ न लगाएँ या वहाँ कहीं भी आराम न करें। पांडू पहले भी दो-तीन बार उस टैंक के नीचे सोता पकड़ा गया था और मैंने उसे वार्निंग भी दी थी...इट इज़ ए क्लीयर केस ऑफ नेग्लिजेंस ऑन दी पार्ट ऑफ दिस पर्सन।"[7]

समान परिस्थितियों का चित्रण 'शहादतनामा' कहानी में भी हैं। कंपनी में ग्रेनक्रशर के बीच में पड़कर एक मज़दूर का हाथ कुचल जाता है। उसी प्रकार टूबलर भी पुराने, कमज़ोर और अनसर्विस्ड होने की वजह से धमाके के साथ टूट जाता है। लेंकिन इन हादसों के प्रति कंपनी न केवल उदासीनता का भाव दिखाती है बल्कि सारा इलज़ाम मज़दूरों के ऊपर डाल देती है। इस नाइनसाफी को देखकर ही यूनियन का ईमानदार कार्यकर्ता अमरजीत कह बैठता है-

दुनिया का दस्तूर है साहब, जहाँ नर्म देखा, वही

दबाना चालू किया।'8 जहाँ लाचारी है, दुर्बलता है वहाँ दबाव डालना और सब कुछ अपने हक में करना दुनिया में सदियों से चली आ रही परंपरा है। व्यवस्था की इस ताकत के आगे आम आदमी हमेशा एक अनाम बोझ से दबे रहते हैं और व्यवस्था इस हकीकत का पूरा फायदा उठाती है। इसलिए अस्थाई मज़दूरों की मज़दूरी बढ़ाने की और काम स्थाई करने की माँग को कंपनी बहुत हल्केपन से नज़रअंदाज़ कर देती है।

'शहादतनामा' कहानी का 'मैं' ग्लूकोस कंपनी में ट्रेनी के रूप में काम करते हुए महसूस करता है कि व्यवस्था द्वारा रचे गए ढाँचे में जीने के लिए आम आदमी को कितनी भयावह लड़ाई लड़नी पड़ती है और अधिकार की श्रेणीबद्ध प्रणाली में निम्न-मध्य तबके में स्थान प्राप्त आदमी कितना छोटा और असहाय है। उस कल कारखाने में बड़े-बड़े यंत्रों के बीच आदमी की हैसियत मात्र मशीन के एक पुर्जे के समान है। व्यवस्था द्वारा, व्यवस्था के लिए इस्तेमाल करते रहने से आदमी आदमी नहीं रहा, वह उसके लिए उत्पादन का एक औज़ार मात्र बनकर रह गया है। व्यवस्था अपने आड़े आनेवाली रुकावटों को बर्दाश्त नहीं कर सकती। 'शहादतनामा' कहानी में कंपनी का कुशल वर्कर अमरजीत कंपनी के अस्थाई मज़दूरों के लिए मैनेजमेंट से लड़ पड़ता है। उसूलों को ताक पर धरकर केवल खुदगर्ज़ मांगों के लिए लड़नेवाले यूनीयन को भी नकारकर अमरजीत अकेले लड़ता है जिसकी कीमत उसे अपनी जान देकर चुकानी पड़ती है। उसे कंपनी की साजिश के तहत धोखे से कास्टिक टैंक में धकेलकर मार दिया जाता है। इस पूरे चक्रव्यूह में अपनी-अपनी जगह सुरक्षित रखने के स्वार्थ में अपने साथी का मौत भी दूसरे कर्मचारियों में निस्संगता के अलावा कुछ प्रतिक्रिया उत्पन्न नहीं करती।

व्यवस्था कभी सुविधाओं की शय्या बिछाकर, कभी कांटों से चुभाकर व्यक्ति को अपनी अंतरात्मा से पलायन के लिए मजबूर करती है। उनमें से कुछ, प्राप्त होनेवाली सुविधाओं की वज़नी अधिक पाकर अपनी अभिलाषाओं को मजबूरी का नाम देते हैं। पर एक सजग और संवेदनशील व्यक्ति इन अनचाही परिस्थितियों के बीच छटपटाता रहता है। कहानी का 'मैं' अमरजीत की हत्या का गवाह है। 'मैं' से उसकी आवाज़ छीनने के लिए व्यवस्था तरक्की कर उसे सुपरवाइज़र बना देती है। अपने अभावों से मिली छोटी सी राहत का मोह, इस तुच्छ सुख को त्यागने की स्थिति में उसे नहीं ला पाता। भले ही यह राहत सतही ही क्यों न हो, उसके भीतर का वह बेहद 'व्यावहारिक आत्म' उसे गुनहगार अहसास से मुक्त कर देता है। 'शहादतनामा' में 'मैं' नौकरी की खातिर हत्या का चश्मदीद गवाह होकर भी कुछ जताने की बेवकूफी न करने के लिए खुद को तैयार करता है। इस बिंदु पर आकर संवेदनशील व्यक्ति भी हार जाता है और इस बेईमान सिस्टम का हिस्सा बन जाता है। अपने अंदर सिस्टम के विरुद्ध एक प्रतिरोधात्मक आवाज़ ढूँढ़ने की कोशिश 'मैं' करता है पर केवल खामोश उदासी ही उसे हाथ लगती है। अनचाही स्थितियों में जीते चले जाने का द्वन्द्व और खींझ उसमें शेष रह जाते हैं।

इन कहानियों में जहाँ एक ओर व्यक्ति की बेबसी और लाचारी चित्रित हैं वही दूसरी ओर प्रतिरोध के स्वर भी मुखरित है। परिवेश के प्रति सजग संवेदनशील व्यक्ति के लिए इस तंत्र में कुछ भी सहज नहीं होता। अपनी हालातों से समझौता हमें झंझटों-झमेलों से दूर रखता है, पर हमारा व्यक्तित्त्व एक नामहीन संज्ञा में परिवर्तित हो जाता है। चुनौतियों को स्वीकारना माने कठिनाइयों का सामना करना। लेंकिन वहाँ आत्मग्लानि के लिए कोई गुंजाइश नहीं रहेगी। ऐसे में अपने चारों ओर बुनी हुई स्थितियों को स्वीकारने के लिए वह स्वयं को बाध्य नहीं समझता बल्कि अपने अस्वीकार से स्थितियों के घेरे को तोड़ने का प्रयास करता है। 'अनुष्ठान' कहानी में मैनेजमेंट के दोगलेपन के खिलाफ विद्रोह की अगुवाई करनेवाला युवक, 'शहादतनामा' का अमरजीत, 'सिद्धार्थ का लौटना' का सिद्धार्थ सभी पात्रों में प्रतिरोध की भावनाएँ हैं। इनमें व्यवस्था के बीच उसका अंग बनकर रहने के बावजूद उसके खिलाफ लड़नेवाले सिद्धार्थ का चरित्र अधिक निखर आया है।

सिद्धार्थ का लौटना में सिद्धार्थ व्यवस्था

की फैशनेबल गुलामी का शिकार होकर अपने कर्तव्य के प्रति चिंतित हो उठता है। संघर्षचेता व्यक्ति होने के नाते पूँजीवादी व्यवस्था की गुलामी उसे कतई पसंद नहीं है। उस दुनिया में पाई जानेवाली नपी-तुली हँसी, कॉकटेल पार्टियाँ, दिखावे से भरी वफादारी से ज़्यादा मज़दूरों के साथ बिताए गए क्षण उसे अधिक जीवंत लगते हैं। न्याय की हर लड़ाई में सिद्धार्थ मज़दूरों का साथ देता है।

पर सुविधाओं का प्रलोभन व्यक्ति के संकल्प को कमज़ोर करता है। व्यवस्था द्वारा षड्यंत्रों के ज़रिए व्यक्तिचेतना को इस तरह अनुकूलित किया जाता है कि अपने व्यक्तित्त्व का हनन भी व्यक्ति को आत्म-गौरव की प्रतिष्ठा लगेगी। सिद्धार्थ को मज़दूरों की दुनिया से अलग करने के लिए उसे असिस्टेंड पर्सनल मैनेजर बनाया जाता है। इस प्रकार उसे अफसरवाली शान-शौकत भरी दुनिया में खींच लेती है। सिद्धार्थ को लगता है-"फांसी का एक सख्त फंदा धीरे-धीरे उसे अपनी गिरफ्त में कसता जा रहा है...।"[9] फ्लेट, गाड़ी, क्लब की मेंबरशिप, बड़े-बड़े होटलों में खाना धीरे-धीरे कंपनी उसके चारों तरफ सुविधाओं का रेगिस्तान बिछा देती है जिससे सिद्धार्थ अपने आपको आलसी और आरामपसंद महसूस करने लगता है। व्यवस्था द्वारा अपने इस्तेमाल किए जाने को भी वह पहचानता है। एक प्रकार की फैशनेबल गुलामी में पड़कर सिद्धार्थ छटपटाता है। उसकी गलती यही है कि वह इस सिस्टम के अनुरूप अपने आपको ढाल नहीं पाता। अपने मूल्यों और मान्यताओं को ताक पर धरकर स्वयं धूर्तों की पंक्ति में बैठ जाना उसके लिए स्वीकार्य नहीं था। लेकिन तरक्की की सीढ़ियों को ठुकराना भी उसके लिए आसान नहीं था। सिद्धार्थ समझ नहीं पाता कि उसकी वफादारी किसकी तरफ है? उसे हरदम दबोचनेवाली व्यवस्था के साथ या उसके साथी मज़दूरों के साथ। उसके दोस्त एवं यूनियन लीडर इम्तियाज़ को कोई चाकू मारता है। इसके पीछे मैनेजर खन्ना का हाथ था। इस सिलसिले में गवाही देने की ज़िम्मेदारी मज़दूर लोग सिद्धार्थ के उपर डालते हैं। लेकिन कंपनी उसे केलकटा ब्रांच का मैनेजर बनाकर उसे वहाँ से हटाना चाहती है। व्यक्ति की महत्वाकांक्षा का पूर्ण रूप से फायदा उठाना व्यवस्था जानती है। पर इम्तियाज़ की हालत, उसकी बच्चों की निरीहता सिद्धार्थ को सारी दुविधाओं से मुक्तकरती है। "आई हैव...आई हैव...आई हैव... वह अंधेरे में मुट्ठियाँ भींचकर वहशियों की तरह चिल्लाता हुआ बिस्तर से उठ खड़ा हुआ था और उसके साथ ही उस पूरे स्वप्निल गाँव का ढाँचा किसी स्टुडियो के सेट की तरह भर-भराता हुआ ज़मीन पर आ गिरा था।"[10] सिद्धार्थ आनेवाली सारी ललकारों को स्वीकारते हए संघर्ष का रास्ता अपनाता है। वह फेशनबिल गुलामी से मुक्त होकर गवाही देने का निश्चय करता है और इस सिस्टम के विरोध में खड़ा हो जाता है।

अपनी न्यूनतम सुविधाओं के भी छिन जाने का डर और व्यवस्था में अपने स्थान को सुरक्षित रखने की होड़ में व्यक्तिहमेशा एक तनी हुई रस्सी पर चलता है। अपने स्वार्थों को विवशता का रूप देने के लिए तथा व्यवस्था के अन्याय को सहन करते रहने के लिए व्यक्तिबाध्य हो जाता है। विवशता की पराकाष्ठा आत्मचेता व्यक्तिको संघर्ष के पथ पर पहुँचाती है। ये कहानियाँ कहीं भी पात्रों के प्रति कोई सहानुभूति उत्पन्न किए बिना पूरी वास्तविकता की पहचान देती हैं। इन कहानियों के पात्र जहाँ आदमी की त्रासदी को सामने रखते हैं वहीं व्यवस्था की विसंगतियों को भी उभारते हैं।

संदर्भ सूची

1. जितेन्द्र भाटिया, सिद्धार्थ का लौटना, पृ:81
2. वही, पृ:33
3. वही, पृ:39
4. वही, पृ:54
5. वहीं, पृ:56
6. वहीं, पृ:58
7. वहीं, पृ:58
8. वहीं, पृ:82
9. वहीं, पृ:101
10. वहीं, पृ:119

सहायक आचार्य,
सरकारी ब्रेण्णन कॉलज,
तलश्शेरी दू.भाः 9945442459)

ममता कालिया की कहानियों में नारी विमर्श

जीता जोस

भारत के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के विभिन्न आयामों की पहचान और परख के साथ तेज़ी से बदलते जीवन मूल्यों की यथार्थपरक अभिव्यक्ति हिन्दी साहित्य को सार्थकता प्रदान करती है। हर एक समाज जिन-जिन समस्याओं और परिस्थितियों से गुज़रता है, समकालीन साहित्य यथार्थों को ही अंकित करता है। इसलिए साहित्य को समाज की आधारशिला माना जाता है। सामाजिक अंतर्विरोधों के प्रति स्वर निकालना साहित्यकार का धर्म है। इस प्रकार साहित्य समसामायिक संदर्भों से जुडकर प्रासंगिक एंव परिवर्तनशील रहा। स्वातंत्रोत्तर भारत के सामाजिक राजनीतिक व सांस्कृतिक परिवेश में सन् 1975 या 1980 के आसपास का समय कई प्रकार के उथल-पुथलों से भरा था। देश के भीतर के तरह-तरह की गतिविधियों के अलावा विदेश से आयातित भूमंडलीकरण ने उपर्युक्त परिवेश को गहरे तौर पर प्रभावित किया था। साहित्य सामाजिक स्पंदनों की हलकी घटनाओं को भी अपने में सामाहित करने का कारण कभी-कभी सामाजिक इतिहास स्पंदनों की हलकी घटनाओं को भी अपने में समाहित करने के कारण कभी-कभी सामाजिक इतिहास की भूमिका भी अदा करता है। प्रेमचंद का साहित्य इसका उत्तम दृष्टांत था। अस्सी के बाद का हिंदी साहित्य भी एक हद तक इस प्रकार सामाजिक इतिहास की भूमिका को भलीभांति निभाता आ रहा है। इस दौर में स्त्री विमर्श हिंदी साहित्य में कदम बढ़ा रहा है। स्त्री संबंधित रचनात्मक अभिव्यक्तियाँ भी शुरु होने लगीं।

भारतीय नारी जीवन के यथार्थों को अभिव्यक्ति देने में हिंदी कहानी ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है । हिंदी कथा साहित्य में नारी लेखन की जो धारा प्रवाहित हो रही है उसमें ममता कालिया की कहानियाँ उल्लेखनीय हैं। ममता कालिया समकालीन महिला लेखिकाओं में प्रमुख हस्ताक्षर है, जिन्होंने नारी विमर्श के विशाल सामाजिक परिदृश्य को उसकी महान उपलब्धियों के संदर्भ में परखने का सराहनीय प्रयास किया है। समकालीन परिदृश्य में साहित्यिक एंव सांस्कृतिक विमर्शों में स्त्री विमर्श का महत्वपूर्ण स्थान है। स्वतंत्र्योत्तर महिला लेखिकाओं ने नारी विमर्श के विशाल सामाजिक परिदृश्य में नारी जीवन के तीव्र दोहन पाठकों को अनुभव कराती है। साठोत्तरी कथा साहित्य जगत में अनेक लेखिकाओं का उदय हुआ जिन्होंने समाज को पैनी दृष्टी से देखा-परखा और पहचान करके सृजन किया। साठोत्तरी लेखिका ममता कालिया की उपस्थिति समकालीन हिंदी साहित्य को वैविध्यपूर्ण एवं सार्थक बनाती है। आप हिंदी साहित्य संसार में अपनी तटस्थ सामाजिक दृष्टि और नारी चेतना से सर्वाधिक चर्चित हैं। ममता कालिया मानवीय संवेदनशीलता के प्रति सजग रहकर वर्तमान से प्रतिबद्ध होकर भविष्य से अपना उत्तरदाइत्व दिखाता है।

स्त्री जीवन या स्त्री मानसिकता का अध्ययन साहित्य का उत्भव जब हुआ तब से स्त्री संबंधित रचनात्मक अभिव्यक्तियाँ भी शुरु हुईं। लेकिन वर्तमान स्त्री विमर्श की शुरुआत उतनी पुरानी नहीं है। स्त्री संवेदना की उन प्रारंभिक गतिविधियों में शुरु करके स्त्री तक संक्रमित सृजनात्मक उपलब्धियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन ममता कालिया जी ने प्रस्तुत किया है।

भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से नारी का स्थान गौरवमय था। धीरे-धीरे भारतीय समाज में नारी की हैसियत समय, काल और परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। भारतीय समाज में नहीं पूरे संसार में स्त्री को दूसरी दर्जे का मानव समझा जाता है। स्त्री शिक्षा और नारी मुक्ति भारत की अहं मुद्दा बन गई। आज की नारी अपनी अस्मिता एवं

अस्तित्व के प्रति जागरूक बन गयी। लेकिन पुरुष सत्तात्मक समाज ने महिला को शब्दविहीन, स्वत्वहीन बनाकर भोगविलास की वस्तु माना गया है। स्त्री की प्रतिभा एवं निपुणता को अनदेखी करके पितृसत्तात्मक समाज उनके व्यक्तित्त्व को कैद में रखने की कोशिश करती है। वर्तमान महिला परिवार और समाज में अपना हस्ताक्षर स्थापित करके अस्तित्व की लंबी रास्ता पार की हैं।

ममता कालिया का जन्म 2 नवंबर 1940 में उत्तर प्रदेश के मथुरा जिले में हुआ था। उनके व्यक्तित्त्व की सबसे बडी खूबी ममता, देश प्रेम, वात्सल्य एवं स्वभाव की मधुरता है। ममता कालिया के व्यक्तित्त्व और कृतित्व के विश्लेषण से उनका नारीवादी चिंतन,गहन संवेदना, विवाह और दांपत्य जीवन पर आस्था एवं नारी का अस्मिताबोध आदि पर स्पष्ट परिलक्षित होते है। उनका व्यक्तित्त्व कहानीकार, उपन्यासकार, कवि, प्राध्यापक, बाल साहित्यकार आदि विविध आयामों से विभूषित है। समाकालीन साहित्य में नारी विमर्श एवं नारी चेतना के साथ पूरे संसार में नारी के विविध आयाम की ओर उन्मुख किया है। उन्होंने नारी जीवन की त्रासदी, अस्तित्व की संघर्ष, अस्मिता बोध आदि का चित्र अपनी रचनाओं में बखूबी से किया है। ममता कालिया अपने भोगे हुए अनुभवों के खुररी यथार्थों को कहानी का विषय बनाया है। ममता जी का रचना संसार निजी और भोगे हुए अनुभवों की गहरी छाप है।

भाषा की दृष्टी से अनुशीलन करने से यह निष्कर्ष हो जाता है कि उनकी भाषा सरल रोचक एवं काव्यात्मक है। अधिकांश कहानियाँ आत्मकथान की शैली में लिखी है। उसी शहर में, पच्चीस साल की लडकी, वह मिली थी बस में, आपत्ती आदि कहानियाँ आत्मकथात्मक शैली का ज्वलन्त दस्तावेज़ है। उन्होंने वर्णनात्मक शैली का भी प्रयोग किया है। उनकी भाषा शैली बिलकुल निजी और रचना शिल्प की दृष्टि से खुबसूरत है। ममता जी की कहानियों की पृष्ठभूमि अस्मिता या अस्तित्व से गहरा संबंध रखता है। उनकी लेखनी युग-युगसे उपेक्षित नारी के अस्तित्व का मौलिक खोज करने का सराहनीय प्रयास अदा की है।

नारी जीवन का सबसे समन्वयक बल्कि संघर्ष भरी पहलू परिवार से संबंधित है, जिसका भारतीय परिप्रेक्ष्य ज्यादा महत्वपूर्ण है। परिवार में नारी, माँ, बहू, बेटी, पत्नी,सास जैसे नारी के बहुरंगी रूपों में प्रकट होती है। प्रस्तुत अध्याय में वर्तमान आत्मनिर्भर नारी के पारिवारिक संबंधों से संबंधित कठिनाइयाँ शोषण, उत्पीडन, अपमान आदि की अभिव्यक्तिकरके नारी के स्वत्व और व्यथा की व्याख्या करने की ईमानदारी कोशिश हुई है।

समकालीन साहित्य नारी के विविध पारिवारिक रूप, समस्यायें, वैचारिक भेद एवं आधुनिक नारी के बदलते प्रतिमान, जिंदगी में गडबडझालों की दयनीय चित्रचर्चा कर रहा है। नारी को परिवार की रीड की हड्डी माना जाता है। फिर भी पारिवारिक संबंधों में नारी बंधनों और पुरुषवर्चस्व की तानाशाही से संघर्षरत है। आधुनिक स्वतंत्र नारी परिवार की जकडबंधी से छुटकारा पाना चाहती है। ममता कालिया पारिवारिक संबंधों में आए नारी के परिवर्तित रूप एंव दृष्टिकोण के प्रति अपनी श्रेष्ठ कहानियों द्वारा पाठकों को गहन विचारधारा की ओर ले जाता है।

भूमंडलीकरण तथा पाश्चात्य संस्कृति का असर भारतीय परिवारिक संबंधों में विघटन की भीषण स्थिति को अनुभूत कराया है। ममता कालिया नारी को केंद्र में रखकर उनके सुख-दुख को परखकर कलात्मक ढंग में कथा-फलक तैयार किया है। आज की उपभोक्त संस्कृति में मानवीय जीवन मूल्यों के महत्व घटते हैं। फलस्वरूप विवाहेतर रिश्ता समाज में पनपने लगे। सेक्स के यांत्रिक जाल में फंसकर उलझने का वास्तविक चित्र ममता कालिया दूसरी आज़ादी, मदिरा, उत्तर अनुराग, अनुभव, लोग भग प्रेमिका' आदि कहानियों द्वारा पर्दाफश किया है। लेखिका स्वतंत्र नारी की बदलती नैतिक वर्तमान और अवैध

संबंधों की काफी आलोचना भी करती है। अपनी कहानियों की नारी पात्रों द्वारा ममता कालिया को बडे पाठक वर्ग को बना लेने में कामयाबी मिली है।

पारिवारिक समस्या के अंतर्गत पति अधीनस्त नारी की अस्मिता और संघर्ष को अत्यंत कुशलता के साथ उद्घाटित किया है। उत्तर आधुनिक युग में भी पुरुष अपनी सामंती मानसिकता छोडता नहीं। वह मिली थी बस में, एक अदद औरत, दर्पण, श्यामा आदि कहानियों द्वारा पति अधीनस्थ नारी की शोषण, पीडा, दर्द एंव संघर्षमय मानसिकता ममता जी ने नारी चेतना के परिदृश्य में बडी सूक्षमता से शब्दबंध किया है।

वैशिष्टपूर्ण लेखन करनेवाली लेखिका ममता कालिया दांपत्य को पारिवारिक रिश्ते में महत्वपूर्ण माना है। ममता कालिया अपने कथा साहित्य द्वारा टूटे दांपत्य रिश्ते का यथार्थ जीवन की अतृप्ति और टूटी पारिवारिक मानसिकता का सच्चा आविष्कार किया है। दांपत्य की सफलता के लिए पति-पत्नि के बीच सच्चा संतुलन और संगठन रखने की अनिवार्यता को लेखिका रेंखांकित किया है। ममता कालिया की कहानियों की पृष्ठभूमि पारिवारिक रिश्ते की सुदृढ़ता और मानवीय संवेदनाओं के साथ-साथ समकालीन समस्यामूलक विषयों से ओतप्रोत है। उनकी कहानियों में अलमारी, दांपत्य, श्यामा, लैला मजनु द्वारा वैवाहिक जीवन की कटु यथार्थ दांपत्यमें आने वाली यांत्रिकता, पति-पत्नि के बीच की मानसिक दूरी आदि के टूटते बिखरते पहलुओं को बडी कुशलता से उजागर किया है। ममता जी की कहानियों का दूसरा सरोकार विचारों की दृढ़-प्रतिबद्धता और सच्चाई से हमें रूबरू करके कथा साहित्य को एक नए मुकाम पर ला खडा किया है। इरादा, राएवाली, आज़ादी, उमस, नया दृष्टिकोण आदि कहानियों द्वारा सास बहु के बीच का पीढी संघर्षों एंव विषमताओं के यथार्थ को बडी बारीकी से किया है। 'पीली लडकी, उपलब्धी, खाली होता हुआ घर, बोलने वाली औरत, एक जीनियस की प्रेम कथा' आदि कहानियों द्वारा प्रेम विवाह की अस्थिरता स्पष्ट करती है। नारी मन की परिवर्तित प्रेमिका रूप की गहराईयों तक जाकर नारी की संवेदनाओं को लेखिका ने वाणी दी है। ठोस जीवन के धरातल पर टिकी हुई ये कहानियाँ विवाह के पहले और बाद प्रेम के बदलते स्वरूप प्रेम विवाह की प्रायोगिक कसौटी पर विशेष बल देती है।

दरअसल स्त्री विमर्श की प्रासंगिकता तभी वज़नदार साबित होती है जब नारी घर के चार दीवारी से लाँघकर समाज की विशाल पृष्ठभूमि पर कदम रहती है। नारी की प्रगति और शोषण में यह सामाजिक संक्रमण कारक बन गया है। ममता कालिया युगों से प्रताडित और शोषित भारतीय नारी के अंतर अस्तित्व बोध की आग जलाने का सृजनात्मक जोखिम उठाया है। इसमें सामाजिक समस्याओं जैसे दहेज प्रथा, गरीबी, बेरोज़गारी, कामकाजी नारी, असुरक्षा लिंग असमानता आदि नारी की अस्मितागत अनगिनत संघर्षों को स्पष्ट करने का प्रयास हुआ है।

समाज और साहित्य के बीच में अटूट संबंध है। ममता कालिया सामाजिक व्यवस्था में आए जटिलताओं और कुकृत्यों का खुल्लम खुल्ला चित्र अपनी कहानियों में उपस्थित करने में सराहनीय प्रयास किया है। समकालीन समाज में नारी अनेक प्रतिकूल वातावरण में या किसी खतरनाक हालत में निडरता से झेलने का मिसाल आज साहित्य में कम नहीं हैं। नारी सुरक्षा जैसे ज्वलंत विषय पर ममता जी काफी ध्यान दिया है। 'इक्कीसवीं सदी, छोटी गुरु, छोट्टिन, मनहुमाबी' आदि कहानियों में नारी सुरक्षा जैसे भयानक समस्या पर आलोचनात्मक दृष्टि डाला है। उत्तर आधुनिकता के इस दौर में भी दिल्ली जैसे महानगरों में कितना असुरक्षित होने का चित्र हम अखबारों में दिन-ब-दिन पढते हैं। बलात्कार जैसे अमानवीय व्यवहार नारी चेतना को विकृत बनाती है। नारी सुरक्षा सिर्फ दैहिक ही नहीं बल्कि आर्थिक, सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक क्षेत्र में भी वही हाल है। 'छोटी गुरु ' नामक कहानी की नायिका रेखा धार्मिक क्षेत्र में नारी असुरक्षा की प्रतीक है। लेखिका श्यामा नामक कहानी द्वारा

गार्हिक असुरक्षा के शिकार बनी श्या की आत्माहुती की खबर बडी संवेदना के साथ पाठकों के दिल में उजागर किया है। संक्षेप में उत्तर आधुनिकता के इस दौर में भी नारी पर समाज का काम असुरक्षा के भय से मुक्त नहीं हैं।

ममता कालिया देहज प्रथा जौसे सामाजिक अभिशाप को लेकर अलमारी, बिटिया आदि कहानियाँ लिखी हैं। बिटिया कहानी की नायिका देहज समस्या के विकृत जाल में फंसे नारी का मिसाल है। 21वीं युग में भी देहज जैसे भयानक सवाल से डरकर स्त्री भ्रूण हत्या बढने में लेखिका अपनी आशंका प्रकट करती है।

ममता कालिया वर्तमान समाज में कामकाजी नारी की दोहरी भूमिका तथा परिवार और सामाजिक बंधनों में उलझती नारी की विवशता का चित्र बडी बारीकी से किया है। 'प्रतिप्रश्न' कहानी की नायिका सुनीशा और 'मनहुसाबी' कहानी की नायिका उषा द्वारा कामकाजी नारी के आत्मसंघर्ष, कुंठाएँ, तनाव, टूठी मानसिकता आदि संवेगों को लेखिका बडी कुशलता से पकडी है। नायिका उषा परिवार और काम दोनों क्षेत्रों के बीच दौडती अपने आप को भूलकर एक तिलचट्टे की तरह जिजीविषा करती है। सामाजिक विसंगतियों को वस्तुनिष्ठ दृष्टि का परिचय अपनी कहानियों द्वारा स्थापित कर लेने में ममता कालिया समर्थ है। आधुनिक समाज में स्त्री-पुरुष समानता का नारा गूँजती रहती है। ममता जी अपनी रचनाओं में लिंग असमानता जैसे ज्वलंत समस्या बडी बारीकी से किया है। मुन्नी, आपकी छोटी लडकी, मनहुमाबी, जन्म आदि कहानियों में लिंग असमानता जैसे नारी शोषण के विविध आयामों को समाज समक्ष पर्दाफाश किया है। आपकी छोटी लडकी कहानी के माध्यम से 13 साल की लडकी की ओर घरवालों के भेदभाव का चित्र खींचा है। 21 वीं शताब्दी में भी भारतीय समाज में लडकी का जन्म अपशकुन मानने का चित्र जन्म कहानी द्वारा दृष्टिगत है। सदियों से चली आ रही लिंग असमानता का विकराल स्प ममता कालिया ने मनहूसाबी कहानी में शब्दबद्ध किया है। ममता कालिया समकालीन परिप्रेक्ष्य में स्त्री विमर्श और स्त्री चेतना के निर्णय में सफल अभिव्यक्ति देना अपना अहम दायित्व मानती है। लेखिका हर एक कहानी द्वारा नारी अस्मिता के बहुआयामी चिंतन और नारी के प्रतिरोध का प्रामाणिक साक्ष्य देकर आज भी कहानियों की निर्मिति में प्रयत्नरत है।

हमारी सामाजिक संरचना में स्त्री की ज़िंदगी रीति-रिवाज़ों ,धर्म और परंपरा के जकडन में घुटन महसूस करती है। लेकिन समय के साथ जो परिवर्तन समाज में हुआ है, उस परिवर्तन का प्रतिफलन स्त्री जीवन में भी परिलक्षित हुआ है। अब तक किसी की परछाई में रही स्त्री बदलते परिवेश में अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व एंव अस्मिता को जाहिर करना चाहती है।

वैश्वीकरण के इस युग में भी कभी-कभी स्त्री जीवन की त्रासदी और प्रतिरोध के स्वर पानी के बुलबुले के समान विलीन हो जाते हैं। फिर भी आत्मचेतना से संपन्न आज की नारी स्वतंत्रता और उन्मुक्तता को अपनाकर परिवार और समाज में अपना अस्तित्व स्थापित कर दिया है। नारी शिक्षा और आर्थिक स्वावलंबन ने परंपरा के अंधानुकरण को समाप्त करके नारी की तार्किक बुद्धी को जागृत किया है। आदर्श नारी के पुराने बिंबों को चुनौती देकर ममताजी ने नारी जीवन की ज्वलंत सच्चाइयों और संवेदनाओं को बारीकी से परखा और अपने लेखन द्वारा संवारा है। उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से पितृसत्तात्मक मूल्यों और लिंग भेद की समस्याओं को चुनौती देकर नारी विमर्श की अवधारणाओं को नई दिशा प्रदान की है।

शोध छात्रा
सेंट थोमस कॉलेज पाला
महात्मा गाँधी विश्वविद्यालय
कोट्टयम

यमदीप और तीसरी ताली का तुलनात्मक अध्ययन

जीत कौर

सार : नीरजा माधव और प्रदीप सौरभ दोनों ही हिन्दी जगत से जुड़े साहित्यकार हैं। नीरजा माधव जी आधुनिक महिला लेखिकाओं में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इन्होंने विविध विषयों को हिन्दी साहित्य के माध्यम से उभारने का सराहनीय प्रयास किया है। दूसरी ओर प्रदीप सौरभ जी हैं जो हिन्दी पत्रकारों में विशिष्ट स्थान रखते हैं। इन्होंने अपनी पत्रकारिता के माध्यम से समाज में जो भी अपनी पैनी दृष्टि से देखा उसका यथार्थ रूप अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया। नीरजा माधव का यमदीप और प्रदीप सौरभ का तीसरी ताली दोनों ही उपन्यास एक ऐसे समुदाय की गाथा को प्रस्तुत करते हैं, जिसे समाज में हमेशा उपेक्षित माना गया है तथा हिजड़ों के नाम पर नारकीय जीवन जीते आये हैं। हिजड़े भी उसी प्रकृति की ही देन हैं, जिसने प्रायः स्त्री और पुरुष को बनाया है परन्तु सदैव से हिजड़े ही समाज में घृणा का पात्र बनते आए हैं। तीसरी ताली और यमदीप में हाशिये पर जीवन यापन कर रहे हिजड़ों के अंतरंग जीवन की मार्मिक गाथा का चित्रण देखने को मिलता है।

यमदीप और तीसरी ताली उपन्यास में तृतीय लिंगी समाज की व्यथा, पीड़ा, समस्याएँ तथा उनके सम्पूर्ण जीवन को अत्यंत बारीकी के साथ दोनों उपन्यासकारों ने प्रस्तुत किया है। दोनों ही उपन्यास एक ही समुदाय पर आधारित होने पर भी दोनों में कुछ समानताएँ और विषमताएँ देखने को मिलती हैं, जिनका तुलनात्मक अध्ययन इस प्रकार है:-

समानताएँ

किन्नरों के प्रति समाज का उपेक्षित भाव- हमारे सभ्य समाज में किन्नर-वर्ग सदैव उपेक्षित रहा है । किन्नर नाम सुनते ही हमारे मन-मस्तिष्क में एक विचित्र प्रकार की भाव-भंगिमा पैदा हो जाती है, जिसे यमदीप तथा तीसरी ताली दोनों ही उपन्यासों में देखा जा सकता है । जब नाजबीबी स्कूल में जानकारी हेतु स्कूल-अध्यापक से मिलना चाहती है, पहले तो उसके प्रवेश पर ही प्रतिबन्ध लगाया जाता है जिसपर वह चपरासी से प्रश्न करती है कि, "पढ़ाई के लिए भी रोक-टोक है क्या, बाबू।"[1] इसके उपरांत जैसे ही वह स्कूल में प्रवेश करती है तो छात्र उसे देखकर ही आपस में कानाफूसी करने लगते हैं। एक छात्र दूसरे से कहता है, ऐ नितिन, उधर मत जाओ। वो देखो, हिजड़ा! मेरी मम्मी कहती है कि इनके पास मत जाना, नहीं तो पकड़ ले जाएँगे।"[2] इसी तरह का वर्णन तीसरी ताली में भी देखने को मिलता है जब गौतम साहब के घर लड़का पैदा होता है तो पूरे परिवार की खुशी का ठिकाना नहीं रहता परन्तु कुछ समय पश्चात जब उन्हें यह ज्ञात होता है कि बच्चा नपुंसक है तो परिवार की खुशियाँ शोक में बदल जाती है। गौतम साहब अपना मानसिक संतुलन खो बैठते हैं, जिसका उदाहरण निम्न पंक्तियाँ हैं, "गौतम साहब कभी मोजा पहनना भूल जाते तो कभी उनकी कमीज पीछे से निकली होती या फिर आगे से। ऐसा लगता था उन पर कोई पहाड़ गिर गया हो।"[3] अकसर ऐसा होता है कि हम एक पथभ्रष्ट संतान या मंदबुद्धि संतान को स्वीकार कर लेते हैं लेकिन ईश्वर द्वारा बनाई गई इस तृतीय प्रकृति की सृष्टि को स्वीकार नहीं कर पाते हैं।

शिक्षा प्राप्ति का अभाव- यमदीप और तीसरी ताली दोनों ही उपन्यासों में एक समानता यह है कि इन दोनों कृतियों में किन्नरों की शिक्षा के अभाव पर रचनाकारों का ध्यान गया है। इस समुदाय को शिक्षा प्राप्ति के लिए कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ऐसा नहीं है कि ये स्वयं पढ़ना नहीं चाहते हैं बल्कि समस्या तो यह है कि हमारी शैक्षणिक व्यवस्था ही ऐसी बनाई गई है जिसमें छात्र या शिक्षक से अधिक उसके लिंग को महत्त्व दिया जाता है। चाहे वह तीसरी ताली की

निकिता हो या यमदीप की नाजबीबी। दोनों की पात्रों की शिक्षा में स्ची होने के बावजूद भी परिस्थितियाँ ऐसी बन जाती हैं कि दोनों के पढ़ने का सपना अधूरा रह जाता है। निकिता किन्नरों की नाच-गाने की प्रवृति को अपनाना नहीं चाहती है अपितु पढ़-लिखना चाहती है और उसकी माँ भी उसकी शिक्षा के लिए हर संभव प्रयास करती है लेकिन निकिता में समय के साथ-साथ हिजड़ों वाले गुण विकसित होने के कारण उसे कक्षा छह के बाद प्रवेश नहीं मिलता है जिससे उसके आगे पढ़ने का सपना अधूरा रह जाता है । उसकी माँ ने लड़कियों के स्कूल तथा लड़कों के स्कूल दोनों ही जगह उसके दाखिले की बात की लेकिन निराशा ही हाथ लगी, जिसका उदाहरण ये पंक्तियां हैं, "उन्हें दोनों ही जगह से एक ही जवाब मिला कि जेंडर स्पष्ट न होने के कारण हम दाखिला नहीं दे सकते हैं...यह स्कूल सामान्य बच्चों के लिए है, बीच वाले बच्चों को दाखिला देने से स्कूल का माहौल खराब हो जाता है।"[4] विवश होकर आनंदी आण्टी को अपनी बच्ची किन्नर नीलम को सौंपनी पड़ती है। निकिता स्वयं को उस माहौल में ढाल नहीं पाती है और आत्महत्या कर लेती है। यही स्थिति उपन्यास यमदीप में भी देखने को मिलती है, जहाँ नाजबीबी भी पढ़-लिख कर एक अच्छी डॉक्टर बनना चाहती है लेकिन जब उसके पिता ने उससे कहा कि हाई स्कूल की पढ़ाई वह घर रहकर ही करे तो वह अपने पिता से कहती है कि, "मैं डॉक्टर कैसे बनूंगी? घर में?"[5] अंततः एक दिन उसे अपने जीवन के सत्य का आभास हो जाता है और वह घर छोड़ने पर विवश हो जाती है, जिससे उसका डॉक्टर बनने का सपना चूर-चूर हो जाता है।

शिक्षा का अभाव किन्नरों की आर्थिक तथा सामाजिक दुर्दशा का सबसे बड़ा कारण है। दोनों ही उपन्यासों में इसका स्पष्ट चित्रण देखने को मिलता है।

परिवार के प्रति भावात्मकता एवं प्रेम- दोनों ही कृतियों की एक अन्य समानता यह है कि इन दोनों में किन्नरों का अपने परिवार के साथ भावात्मक और प्रेमपूर्ण व्यवहार दिखाया है परन्तु परिवार वाले उनके साथ कोई सम्बंध नहीं रखना चाहते, जिसका चित्रण तीसरी ताली की विनीता और यमदीप की नाजबीबी के माध्यम से देखा जा सकता है। नाजबीबी अपने परिवार से बहुत प्रेम करती है तथा आजीवन माता-पिता के साथ रहकर उनकी सेवा करना चाहती है। परन्तु परिवार वालों की अपने प्रति निरन्तर चिंता देखकर वह विवश होकर घर से एक दिन भाग जाती है और किन्नरों की बस्ती में जाकर रहती है। किन्नर बस्ती में रहने के बावजूद भी वह अपने माता-पिता के संपर्क में रहती है और उनका हाल जानने के लिए कभी-कभी घर भी चली जाती है। उसे इस तरह से घर आते देख एक दिन उसका पिता उससे कहता है कि- "बेटा, तुम्हारे बइया का स्वभाव अब पहले जैसा नहीं है। भाभी भी उसी जैसी है। इसलिए टेलीफोन से बात कर लिया करो।"[6] परन्तु टेलीफोन पर बात करते हुए भी एक दिन उसका भाई कह देता है कि- "देखो तुम्हारा बार-बार टेलीफोन करना या इस परिवार से संबंध रखना, हमारी इज्जत तो बढ़ाता नहीं, उलटे तुम्हें भी दुःख होता है और मम्मी-पापा को भी। तुम परिवार में रह नहीं सकतीं, हम रख भी नहीं सकते। इसलिए यह समझ लो कि तुम अनाथ हो। कोई नहीं तुम्हारा दुनिया में।"[7] परिवार के प्रति प्रेम भावना होने के उपरांत भी इस समुदाय के लोगों को परिवार से दूर रहने के लिए विवश होना पड़ता है। तीसरी ताली उपन्यास की पात्र विनीता भी जब वर्षों बाद अपने पिता से मिलती है तो उनके पैरों में गिरकर फबक-फबक कर रोती है तथा पिता से मिलने के पश्चात उसे अपनी पुरानी यादें बार-बार विस्मृत होती हैं, जिसका वर्णन इन पंक्तियों के माध्यम से किया गया है, "अपने पिता गौतम साहब से मुलाकात के बाद उसे अपना घर बार-बार याद आने लगा था। अपनी बहनें याद आती थीं।"[8]

यौन संबंधों की ओर प्रभावित होते किन्नर- वर्तमान समय में किन्नर प्रजाति के लोग यौन शोषण की ओर अधिक प्रभावित हो रहे हैं, जिसका चित्रण दोनों ही उपन्यासों में किया गया है। आरंभिक समय

में इस समुदाय के लोग नाच-गाकर धन अर्जित करते थे, जिसे ये ईश्वर का वरदान समझते थे और उसी धन में अपना जीवन यापन करते थे। जब भी किसी के घर बच्चा पैदा होता या कोई शुभ अवसर होता तो यह लोग अपनी-अपनी मण्डली के साथ उस घर में जाते और अपना शुभ आशीर्वाद देकर उस घर से किसी-न-किसी सदस्य से नेग (पैसे आदि) लेते थे तथा लोग भी उन्हें अपने घर से जल्दी निकालने के उद्देश्य से कुछ पैसे इत्यादि दे देते थे। परंतु आज के इस आधुनिक युग में लोगों ने अपने घर की दीवारों को इनता ऊँचा बना दिया है कि घर के भीतर क्या हो रहा है इस बात की ख़बर भी पड़ोसियों को कुछ दिनों बाद ही मिलती है तो किन्नरों को घर के भीतर हो रही गतिविधियों की सूचना कैसे मिल सकती है, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में और अधिक कमी पड़ने लगी है और अपना पेट पालने के लिए विवश होकर ये लोग कुमार्ग की ओर प्रवृत्त हो रहे हैं। इसका उदाहरण यमदीप उपन्यास में नाजबीबी की यह पंक्ति है जहाँ वह कहती है कि, "हम कोई इंसान तो नहीं कि हमारे तन की आग हमें ऐसा करने को मजबूर करे । बस पेट की आग से.....।"[9]

अप्राकृतिक यौन सम्बन्धों में पड़कर कुछ किन्नरों को यौन-रोग का शिकार भी होना पड़ता है जिसका वर्णन यमदीप में महताब गुरू के कथनों से देखा जा सकता है, जहाँ वह नाजबीबी से कहते हैं कि, "देखो, नाज, चोरी-छिपे यहाँ जो धंधा चल रहा है उसका फल तो तुम देख ही रही हो । जुबैदा चल बसी और अब सोबराती की बारी है अब चला जाए कि तब। इसलिए बस्ती में हम सबको मना करते रहे कि जिस काम को करने लायक अल्ला ने हमें नहीं बनाया तो उसके साथ कोई जोर-जबरदस्ती मत करो।"[10]

तीसरी ताली उपन्यास में भी किन्नरों के यौन संबंधों का वर्णन मिलता है । क्योंकि उन्हें यह लगता है कि इस मार्ग को अपनाकर पैसा अधिक मिलता है। रेखा चितकबरी की पूरी किन्नर मण्डली इसी साधन से पैसे कमाती है लेकिन कभी-कभी स्थिति ऐसी हो जाती है कि इस धंधे में पड़े किन्नरों की हत्या भी की जाती है जिसका तीसरी ताली उपन्यास में रेखा चितकबरी की शिष्या के माध्यम से देखा जा सकता है ।

दोनों ही कृतियों में कुछ समानताएँ होने के उपरांत कुछ विषमताएँ भी हैं जिनको इस प्रकार देखा जा सकता है:-

यमदीप और तीसरी ताली दोनों ही उपन्यास किन्नर-जीवन से संबंधित हैं लेकिन दोनों कृतियों की अपनी-अपनी विशिष्टताएँ हैं। तीसरी ताली में कुछ पैसों के लिए माता-पिता अपनी मासूम बच्ची को जन्म के तुरन्त बाद ही किन्नर डिम्पल को सौंप देते हैं तथा यमदीप में पागल स्त्री से जन्मी बच्ची को समाज में कोई भी स्वीकार नहीं करता है तो किन्नर नाजबीबी उस बच्ची को स्वयं गोद ले लेती है। दोनों ही उपन्यासों की यह असमानता है कि तीसरी ताली की डिम्पल बच्ची- मंजू को किन्नरों की तरह जीवन जीने का समर्थन करती है। वह उसे चाह कर भी एक स्त्री की तरह जीवन नहीं जीने नहीं देती क्योंकि उसको भी अपनी बिरादरी की चिंता रहती है कि कहीं कोई किन्नरों पर यह प्रश्न न करे कि किन्नर होकर इसने एक पुत्री को कैसे जन्म दिया और उसे किन्नरों की तरह रहने के लिए बाध्य करती है, जिसका उदाहरण ये पंक्तियां हैं, "धीरे-धीरे उसे लगने लगा कि हिजड़े के बच्चे को कौन दाखिला देगा स्कूल में? वह क्या जवाब देगी कि उसे यह लड़की कहाँ से मिली? उसका बाप कौन है? और, सबसे बड़ा सवाल यह कि कौन शरीफजादा हिजड़े की लड़की से शादी करेगा? इन सवालों के आगे जब डिम्पल हार गई, तो उसने मंजू को हिजड़ा बनाने का फैसला कर लिया। उसे नाच-गाना सिखाया और मण्डली के साथ ले जाने लगी।"[11] परन्तु यमदीप की नाजबीबी गोद ली हुई बच्ची-सोना को किन्नर जीवन से दूर रखती है। यहाँ तक कि उसे अपने किसी जूठे बरतन में भी कुछ खाने नहीं देती। वह यह कहती है कि, "हम हिजड़ों का जूठा... बेचारी अच्छा-खासा इनसानी तन लेकर आई

है। क्यों उसे बेधरम करें।"[12] वह उसके उज्ज्वल भविष्य की कामना करती है। इतना ही नहीं वह उसे अच्छी शिक्षा देने के लिए हर सम्भव प्रयास भी करती है तथा सोना का दाखिला एक स्कूल में भी करवाती है। सोना की शिक्षा में कोई कमी न हो तथा उसे स्कूल की हर आवश्यक वस्तु दिलाने के लिए वह अपने समुदाय के कुछ नियमों को भी तोड़ती है लेकिन वह अपने गुरू से नहीं छिपाती है और साफ-साफ कह देती है कि, "गुरूजी, आपसे मैं नहीं छिपा सकती। मैंने बेईमानी की है, लेकिन एज नेक काम के लिए। मैं सोना को पढ़ाना चाहती हूँ।"[13] नाजबीबी एक शिक्षित परिवार से थी तथा शिक्षा प्राप्ति का जो उसका अपना सपना अधूरा रह गया था शायद सोना के माध्यम से वह उस सपने को पूरा करना चाहती थी।

दोनों ही रचनाओं में एक विषमता यह भी है की तीसरी ताली में पूर्ण पुरुष को हिजड़ा बनते दिखाया गया है तथा उनका हिजड़ा बनने के कारणों को भी स्पष्ट रूप से चित्रित किया गया है। गोपाल नामक पात्र हिजड़ों की गद्दी प्राप्त करने की लालसा में आकर स्वेच्छा से हिजड़ा बनना स्वीकार करता है परन्तु वहीं ज्योति नामक पात्र ठाकुर के यहाँ लौंडेबाजी करता है तथा किसी कारणवश निकाले जाने पर गरीबी के दलदल में फंस जाता है और विवशता के कारण स्वयं हिजड़ा बनकर इस समुदाय में शामिल करता है। वह स्वयं कहता है कि, "मैं मर्द रहूँ, औरत रहूँ य फिर हिजड़ा ब जाउँ, इससे किसी को कोई फर्क नहीं पड़ेगा, पेट की आग तो बड़े-बड़ों को न जाने क्या-क्या बना देती है।"[14] इसके अतिरिक्त राजा नामक पात्र को किन्नर डिम्पल द्वारा जबरदस्ती हिजड़ा बनाते हुए भी दिखाया गया है। परन्तु उपन्यास यमदीप में इस तरह के चित्रण का पूर्ण रूप से अभाव है। भूख से कभी-कभी विवश होकर यहाँ इन लोगों का किसी अन्य से गैर संबन्ध बनाते हुए दिखाया गया है लेकिन किसी पूर्ण स्त्री या पुरुष को हिजड़ा बनते नहीं दिखाया गया है ।

देह-व्यापार की समस्या का चित्रण दोनों की रचनाओं में देखने को मिलता है परंतु दोनों ही जगह असमानता इस बात की है कि लेखक प्रदीप सौरभ ने किन्नरों के देह-व्यापार की चर्चा की है और किन्नर गुरू रेखा चितकबरी द्वारा अपने शिष्यों का देह-व्यापार करते दिखाया है तथा यमदीप उपन्यास में लेखिका नीरजा माधव ने समाज नारी उदार-गृह की संरक्षिका रीता देवी द्वारा वहाँ की अबोध बालिकाएँ जो किसी कारण अपने घर से निकल कर नारी उदार-गृह में शरण लेकर बैठती हैं का देह-व्यापार करवाते दिखाया है, जिसका उदाहरण यह पंक्तियां हैं, "वो एक लड़की किसी तरह वहाँ से भाग निकली थी। उसी से बयान दिया कि वहाँ उन सबसे गलत धंधा करवाया जाता है। बड़े-बड़े लोग रोज आते हैं। उनमें से किसी को छाँटकर कहीं ले जाते हैं और फिर पहुँचा जाते हैं। जो लड़की विरोध करती है उसे मारा-पीटा जाता है। सिगरेट से जलाया जाता है।"[15]

प्रदीप सौरभ ने तीसरी ताली में पुरुष-समलैंगिकता, स्त्री- समलैंगिकता, उभयकामी, लौंडेबाजी जैसे विषयों पर भी प्रकाश डाला है जबकि लेखिका नीरजा माधव ने यमदीप में किन्नर-जीवन के साथ-साथ समाज में स्त्री-अस्मिता के अतिरिक्त समाज में शोषण, राजनैतिक भ्रष्टाचार इत्यादि जैसे विषयों पर प्रकाश डाला है।

निष्कर्ष : अतः निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि नीरजा माधव और प्रदीप सौरभ हिन्दी जगत के चर्चित साहित्यकार हैं तथा इनके द्वारा रचित उपन्यासों- यमदीप तथा तीसरी ताली में किन्नर समुदाय के विभिन्न पहलुओं को चित्रित किया गया है। दोनों ही रचनाएँ एक ही समुदाय पर आधारित होने के उपरांत भी रचनाकारों ने अपने-अपने दृष्टिकोण के माध्यम से इन्हें प्रस्तुत किया है, जिसके कारण उपन्यासों में कुछ समानताओं के होते हुए भी कुछ विषमताएँ अवश्य देखने को मिलती हैं, जिन्हें उपर्युक्त विवेचन में देखा जा सकता है। अतः किन्नर जीवन पर लिखे दोनों ही उपन्यास हिन्दी साहित्य जगत में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं तथा किन्नर समुदाय को स्पष्ट रूप से पाठक-वर्ग के

समक्ष रखने में सफल उपन्यास भी समझे जा सकते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. माधव, नीरजा. यमदीप, सुनील साहित्य सदन प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2018, पृष्ठ. 49
2. वही, पृ. 49
3. सौरभ, प्रदीप. तीसरी ताली, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 2011, पृष्ठ. 40
4. वही, पृ. 42
5. माधव, नीरजा. यमदीप, सुनील साहित्य सदन प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2018, पृ. 62
6. वही, पृ. 95
7. वही, पृ. 82
8. सौरभ, प्रदीप. तीसरी ताली, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 2011, पृष्ठ. 154
9. माधव, नीरजा. यमदीप, सुनील साहित्य सदन प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2018, पृ. 137
10. वही पृ. 28
11. सौरभ, प्रदीप. तीसरी ताली, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 2011, पृष्ठ. 31
12. माधव, नीरजा. यमदीप, सुनील साहित्य सदन प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2018, पृ. 18
13. वही पृ. 45
14. सौरभ, प्रदीप. तीसरी ताली, वाणी प्रकाशन, नइ दिल्ली, संस्करण- 2011, पृष्ठ. 57
15. माधव, नीरजा. यमदीप, सुनील साहित्य सदन प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2018, पृ. 269

शोधार्थी , हिन्दी विभाग
कश्मीर विश्वविद्यालय
हजरतबल, श्रीनगर

कविता

प्यार खुद से करो

श्रीनिधी शिवदासन

(1)

प्यार की उम्मीद और उसके लिए किया
गया इंतज़ार
दोनों ही हमेशा होते हैं बेकार।
ज़रूरी है करना खुद से प्यार;
फिर देखना,
करने लगेगा तुमसे प्यार
यह पूरा संसार!

2. मंज़िल की ओर.....

मंज़िल तक पहुँचना
मुश्किल है समझना तुम।
ज़रूरी हैं ये कुछ बातें -
मन में हिम्मत और खुद की मेहनत,
मित्रों का साथ और सिर पर
माँ, बाप और गुरु के हाथ।
फिर क्या?
मंजिल अपने आप आयेगा तुम्हारे पास
जिस तक पहुँचने की थी तुम्हें प्यास!

बी.कॉम (फैनान्स)
एस.एन.जी.एस. कॉलेज, पट्टाम्पी

'पट्टिनत्तार' (काव्य)

अनुवादक : प्रो.डी. तंकप्पन नायर **मूल : पी. रविकुमार**

(पूर्वप्रकाशित से आगे)

(3) राजा खड़ा होता है; पट्टिनत्तार बैठता है

हे राजा!
तिरुवेण्काटन
पत्नी
जननी
कारिंदा और
परिचारकों को
छोड़कर
राजमहल सदृश
अपना भवन
असीम धन और
धान्यागारों को
छोड़कर
नवरत्नों और
स्वर्णाभरणों को
गली में फेंक देकर
दरिद्र होकर
परित्यागी होकर
केवल कौपीन पहना हुआ
नगर की सीमा के
जीर्ण सराय में बैठता है।
गली गली घूमकर
भिक्षा माँगता है
बिना किसी कारण के
सब सुखों को
तृणवत् फेंक दिया है -
तिरुवेण्काटन तीव्र
पागलपन से ग्रस्त है।

हम तिरुवेण्काटन के
बंधुमित्रादि को
तिरुवेण्काटन की
यह सूरत देखकर
असहनीय दुख है।
हम सब
अपमानित हुए हैं।
तिरुवेण्काटन की बहन
अपने छोटे भाई का यह उन्माद देखकर
दुखी होकर
दरवाजा बंदकर घर बैठती है।
तिरुवेण्काटन को
भीख माँगते देखकर
हमारा चेहरा देखने को
उन्हें शरम होती है!

हे राजा!

आपको इसके लिए
एक परिहार करना चाहिए।
तिरुवेण्काटन से मिलकर
घर लौटने को कहें
कहना चाहिए कि बहन का
बंधुजनों का और
मित्रों का अपमान न करें।

हे राजा!
आपके पैरों पडकर
हम प्रार्थना करते हैं!"

राजा पालकी पर सवार होकर
अपने परिजनों सहित

जीर्ण सराय पर पहुँचा

राजा पालकी से उतरे
पट्टिनत्तार के सामने खडा हुआ
ध्याननिष्ठ
पट्टिनत्तार ने अँखें खोलीं।
"हे तिरुवेण्काटन!
मेरे हर जन्मदिन में एक रत्नमाला
मुझे भेंट करनेवाले
करोडपति आपको
क्या हुआ है?
सब कुछ विचित्र होता है
मैं इसे विश्वास न कर पाता।
प्रियपत्नी एवं
स्नेहनिधि माताजी को और
असीम संपत्ति को
छोडकर परित्यागी बनकर
भिक्षापात्र लेकर
यों
इस जीर्ण सराय में
आकर बैठने का क्या कारण है?
सर्वसुखों को
त्यागने से
आपने क्या पाया?

पट्टिनत्तार ने बताया:
"आप राजा मेरे सामने
खड़े होते हैं;
परित्यागी मैं आप के
सामने बैठता हूँ।"

पट्टिनत्तार के शब्दों की गूँज में
राजा काँपा -
उन शब्दों से प्रसारित
ज्ञान का तीव्र प्रकाश झेलने को
असमर्थ होकर राजा ने नेत्र बंद किये!
अंध तम में
अनंत होकर लंबी होती गई
जन्मों की शृंखलायें व्यक्त हुईं...

राजा ने संभ्रांत होकर
आँखें खोलीं :
हे ईश्वर!
इन जन्मों में से
किस दिन होगी मेरी मुक्ति?

राजा ने पट्टिनत्तार के आगे
अत्यंत विनीत भाव से
सिर नवाकर बिदा लिया।

(4)

अपना पाप स्वयं को जला डालेगा
मालपूआ घर को जला डालेगा

पट्टिनत्तार गाता है :
"हर एक मनुष्य
नारी में
स्वर्ण में
मिट्टी में
मन अर्पित कर
उन के लिए
दिन-रात
कठोर श्रम करके
अत्यंत विवश होकर
एकाकी हो जाता है।

मृतकों के
शवों के चारों ओर
मरने जा रहे शव
चिल्लाते हैं।"

बहन :
"न जाने क्या-क्या बड़बड़ाता हुआ
वह पागल अभी
भीख माँगने आ रहा है।

इस कावेरी नगर में
था वह बिना किरीट का राजा -
सब कुछ छोडकर
एक जून के भोजन के लिए
भीख माँगकर फिरता है -
ईश्वर भी
इसको माफ़ी नहीं देगा।
मेरा प्रियंकर अनुज!
क्या तू मुझे भूल गया?
निमिष भर के लिए
जरा इस दरवाजे पर खडा हो
बचपन से लेकर तेरा
सबसे पसंदीदा मालपूआ
मैं ने बना रखा है।"

पट्टिनत्तारः
"मेरी सारी रुचियाँ
पहले ही नष्ट हो चुकी हैं"
बहन :
"मेरा प्रियंकर अनुज!
मैं तेरी प्रतीक्षा कितने
दिनों से कर रही हूँ
मेरे लिए इसे खा ले।"

मालपूआा का मारक
विष देखकर पट्टिनत्तार मुस्कुराया।
पट्टिनत्तार ने मालपूआ को
फेंक दिया बहन के घर के
छप्पर की ओर।

पट्टिनत्तार ने कहा :
"अपना पाप स्वयं को जला डालेगा
मालपूआ घर को जला डालेगा।"
उस मालपूए से
एक चिनगारी बिखरी
वह ज्वाला बनकर भडक उठी
छप्पर सहित सारा घर
आग में जल उठा
पट्टिनत्तार के
पैरों पर पड़कर
बहुत चिल्लायी :
"मुझे माफ़ी दे!
मैंने किया है घोर पाप।
मुझे माफ़ी दे!"

पट्टिनत्तार ने प्रार्थना की :
"हे शिव!
इस नासमझ स्त्री को
क्षमा कर दें,
अनुकंपा करें!"

अग्निज्वालायें
अचानक थम गयीं

पट्टिनत्तार गाता है :
हे शिव!
तेरी कृपा होने पर
पंचभूत मिटे,
पंचेंद्रियों मिटीं
शब्द, स्पर्श, रूप,
रस गंध सब मिटे,
सत्व, रज तम जैसे
त्रिगुण मिटे,
तृष्णायें मिटी
भूत भावी और वर्तमान मिटे
मन, बुद्धि चित्त
अहंकार आदि अंतःकरण मिटे
अहं का भाव
पूर्णतया मिटकर
शिवमय होकर
मैं हूँगा प्रकाशमान!"

(क्रमशः)

आत्मकथा

देवयानम्

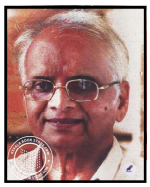

अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना

मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा

आठवाँ देवपद - स्यानन्दूरपुरम

(पूर्वप्रकाशित से आगे)

केरल ग्रंथशाला संघ का दफ्तर हमारे छात्रावास के बिलकुल निकट था। उसके स्थापक श्री पी.एन.पणिक्कर की सहायता करने के लिए कभी मैं वहाँ जाता था। उसी प्रकार केरल के पुस्तकालयों में भाषण देने के लिए भी मैं जाता था। वर्षों बाद राजाराम मोहन रॉय लाइब्रेरी फौण्डेशन की शासक-मण्डली का मैं अंग बन गया था।

यह तो अत्यधिक मधुर स्मृति की बात है कि यूनिवर्सिटी कॉलेज के मेरे विद्यार्थी जीवनकाल में हमारी राजधानी में जितने सांस्कृतिक विकास हुए थे उन सब के साथ मेरा अटूट संबंध था। टैगोर अकादमी, जिसका नेतृत्व करते थे स्वर्गीय श्री के.सी.पिल्लै, गाँधी विचार परिषद जिसके मंत्री थे के. जनार्दनन पिल्लै, श्री स्वाती तिरुनाल संगीत सभा एवं कथकली-क्लब - इन सभी सांस्कृतिक संस्थाओं के साथ मेरा बड़ा सहयोग था। राजधानी में स्थित केरल का महान, अमूल्य एवं अद्भुत मंदिर - श्री पद्मनाभ स्वामी का मंदिर - और उसके स्वत्वाधिकारी कवटियार राजमहल के लोगों के साथ भी मेरा निकटतम संबंध हमेशा रहता था। नवरात्री पूजा के समय हर साल मंदिर के नवरात्री मण्डप में वरिष्ठ संगीतज्ञों की प्रामाणिक संगीत गोष्ठी हुआ करती थी। संगीत की उन मीठी अनुभूतियों ने ज़िंदगी को जीने योग्य बना दिया था।

मलयालम साहित्य के सुप्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित महानुभावों के साथ परिचय पाने का सौभाग्य भी मुझे मिला था। उनमें प्रमुख थे शूरनाट्ट कुंजन पिल्लै, पाला नारायणन नायर आदि। गुरु गोपिनाथ, चंद्रशेखरन नायर आदि नर्तकों के साथ भी मेरी मित्रता हो गई थी। श्री.सी.एन.श्रीकण्ठन नायर के साथ मेरी विशेष ममता थी। उनके सुप्रसिद्ध तीन नाटक हैं - कांचनसीता, लंकालक्ष्मी एवं साकेतम जो रामायणत्रय नाम से जाने जाते हैं। ये नाटक जब रंगमंच पर खेले जाते थे तब मैं अवश्य वहाँ पहुँचता था। मेरे लिए बहुत प्रिय हैं ये तीनों रचनाएँ। 'लंकालक्ष्मी' की रचना किसी आधी रात को पूर्ण हुई थी। उन्होंने मुझसे कहा - "शर्मा जी, यह ज़रा पढ़ो।" दो घंटे में ही मैंने वह हस्तलिपि पढ़ कर उनसे कहा - "यह तो गंभीर एवं उज्ज्वल ऐतिहासिक नाटक है। नाटक साहित्य में इसका विशेष महत्वपूर्ण स्थान होगा।" मेरी यह बात सुन वे मुझे देखते ही रहे; कुछ बोल न सके। हम दोनों किसी अनिर्वचनीय अनुभूति का अनुभव कर रहे थे।

एक दिन सुप्रसिद्ध कवि, पंडित एवं मातृभूमि साप्ताहिक के संपादक श्री एन वी कृष्ण वारियर हमारे विभाग में भाषण देने आये थे। उस दिन शाम को मातृभूमि पत्र के दफ्तर में जाकर मैं उनसे मिला था। साहित्य के विख्यात समालोचक श्री कुट्टिक्कृष्ण मारार के साथ भी मेरा परिचय हुआ था। वे भी हमारे कॉलेज में भाषण देने आए थे। डॉ नारायण पिल्लै ने ध्वनि-सिद्धांत के बारे में जो प्रौढ़ एवं गंभीर तीन भाषण भी विशेष महत्व के थे। महाकवि जी. शंकर कुरुप्पु, प्रोफसर एन.गोपाल पिल्लै, शूरनाट्टु कुंजन पिल्लै आदि साहित्य के महान व्यक्तित्वों के स्नेह एवं परिचय पाने का सौभाग्य मुझे मिला था। इस प्रकार स्यानंदूरपुर (तिरुवनंतपुरम) की अपनी ज़िंदगी की यह प्रारंभिक दशा ही मेरे लिए अत्यंत उन्मेषदायिनी बन गई थी; अपने धैषणिक विकास के लिए परम प्रयोजनीय सिद्ध हुआ था।

(क्रमशः)

डॉ.दिव्या एस. अय्यर आई.ए.एस. आदर्श विद्यालय के वार्षिकोत्सव में भाषण दे रही हैं।

केरलज्योति मुख्य संपादक प्रो.डी.तंकप्पन नायर के नवति समारोह के दौरान
केरल हिन्दी प्रचार सभा का आदर मुरलीधन एम.पी. कर रहे हैं।

RNI No. 7942/1966
Date of Publication :15-02-2024
Date of posting : 20th of Every month

KERAL JYOTI

FEBRUARY 2024

Vol. No. 60, Issue No.11
Regn. No. KL/TV(S) 381/2022-2024
Price Rs. 25/-

A monthly Publication of Kerala Hindi Prachar Sabha approved for School Libraries by the Education Dept., Govt. of Kerala as per notification No. B-3 / 4036/83 SIE dated 20-9-1985
Approved by University of Kerala as per order No. Ac. A II / 1 / 31965 / Std. Journals/2013 / dtd : 27-6-2013

केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 के लिए मंत्री अ.व.डॉ.मधु बी द्वारा प्रकाशित, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवननंतपुरम-695014 में मुद्रित, प्रो.डी.तंकप्पन नायर व डॉ.रंजीत रविशैलम द्वारा संपादित

Published by the Secretary, Adv. Dr. B. Madhu for Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014
Printed at Rashtravani Mudranalaya, Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014 & edited by Prof.D.Thankappan Nair & Dr.Renjith Ravisailam